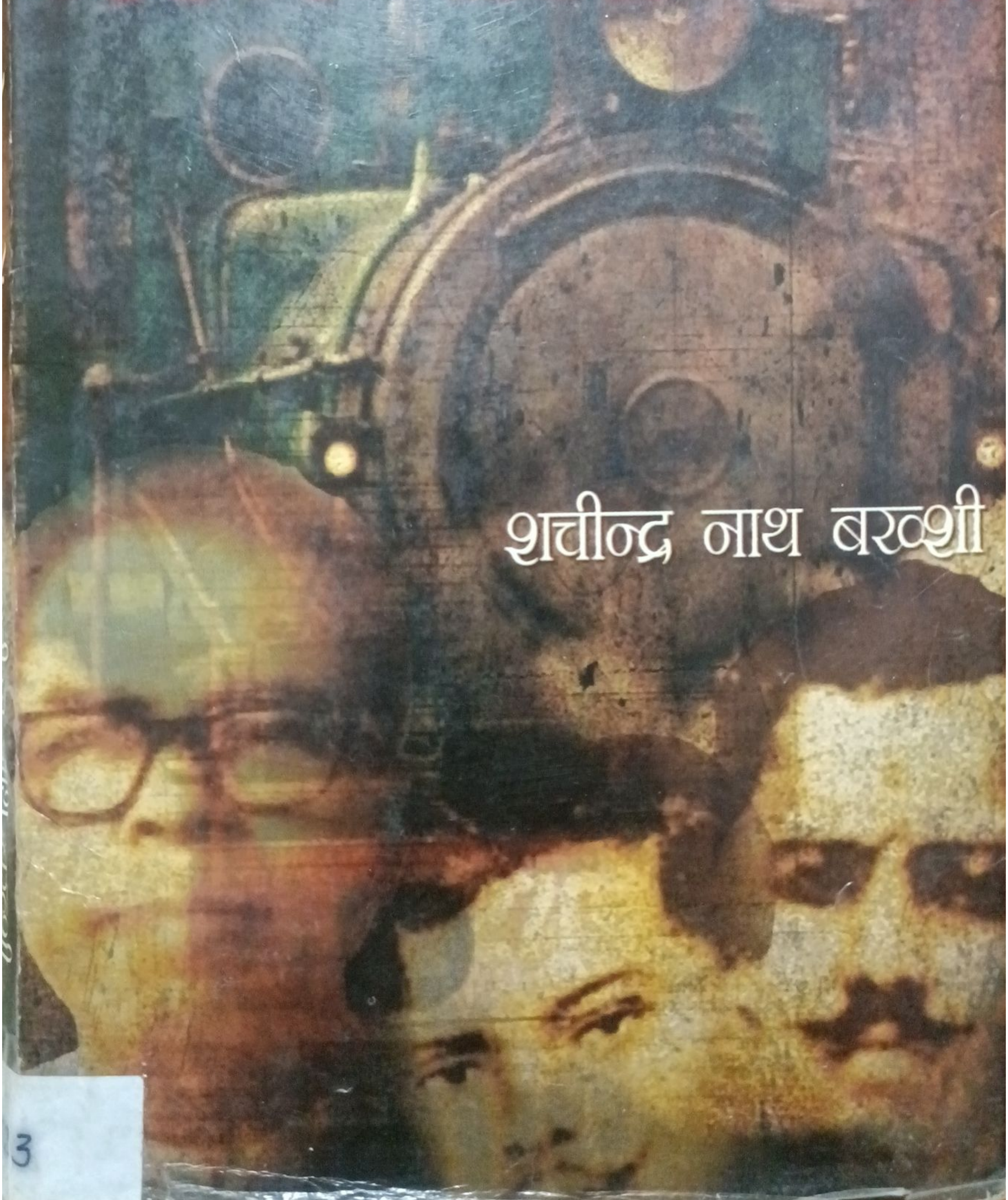
वतन पर मरने वालों का...



शचीन्द्र नाथ बख्शी

पुस्तक–'वतन पे मरनेवालों का...'

भारत के स्वाधीनता संग्राम में अनगिनत क्रान्तिकारियों ने अपने प्राणों की आहुति दी थी। इन क्रान्तिकारियों व इनके योगदान को देश व समाज विस्मृत करता जा रहा है। इनके विचार व सर्वस्व बलिदान करने की भावना, आज भी लोगों में नई स्फूर्ति जाग्रत करने तथा उन्हें देशभक्ति की भावना से अभिभूत करने में सक्षम हैं। ऐसे ही क्रान्तिकारियों की कुछ अनकही, रोचक व जीवन्त विवरण—एक क्रान्तिकारी की कलम से।

वतन पे मरने वालों का...

शचीन्द्र नाथ बख्शी

ग्लोबल हारमनी पब्लिशर्स
नयी दिल्ली-110048

ISBN : 978-81-904820-3-5

प्रकाशक : ग्लोबल हारमनी पब्लिशर्स
1376, अप्पर मैज़्जनाइन फ्लोर
कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

प्रथम संस्करण : 2009

मूल्य : 250.00

लेज़र : कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110032

मुद्रक : बी.के. ऑफसेट, शाहदरा, दिल्ली-110032

VATAN PE MARNE WALON KA...
by Shachindra Nath Bakhshi

दो शब्द

भारत के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में क्रान्तिकारियों के बलिदान की गौरव-गाथाएँ जितनी रोचक व मर्मस्पर्शी हैं उतनी ही आदर्शवादी तथा प्रेरणादायी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने में 'काकोरी काण्ड' का भी विशेष योगदान रहा है। दिनांक 9 अगस्त 1925 को काकोरी काण्ड को क्रियान्वित करने वाले मात्र दस क्रान्तिकारी थे, जिन्होंने ट्रेन से सरकारी खजाना लूटकर ब्रिटिश सरकार को ललकारा था। इस काण्ड में चार क्रान्तिकारी सर्वश्री रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खाँ, रोशन सिंह व राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी को फाँसी दे दी गयी थी तथा अन्य को विभिन्न सज़ाएँ दी गयी थीं।

उन्हीं दस क्रान्तिकारियों में से एक श्री शचीन्द्र नाथ बख्शी, जिन्हें इस काण्ड में आजीवन कारावास की सज़ा मिली थी, ने अपने साथी क्रान्तिकारियों व सहयोगियों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण व अविस्मरणीय घटनाओं का जीवन्त विवरण अपने जीवन-काल में ही समय-समय पर लिखा था। इन संस्मरणात्मक लेखों से स्पष्ट होता है कि पराधीन भारत में अपना सर्वस्व विसर्जित करने वाले बलिदानियों की कमी न थी, तो फिर स्वाधीनता के साठ वर्षों पश्चात आज हमारे बीच देशहित की बात सोचने वाले नगण्य क्यों हैं? वर्तमान समाज का वास्तविक रूप इतना दूषित क्यों है?

देशहित में अपना सर्वस्व विसर्जित व बलिदान करने वाले इन क्रान्तिकारियों के योगदान का पाठ्य-पुस्तकों में समावेश करना तो दूर, इतिहास में जो स्थान मिलना चाहिए था वह भी इन्हें नहीं दिया गया तथा इनकी कीर्ति-कथाओं की उपेक्षा की जाती रही है। देश इन्हें विस्मृत करता जा रहा है और आज का युवा वर्ग तो इन क्रान्तिकारियों का नाम तक नहीं जानता। कितने दुःख का विषय है कि हम अपने गौरवपूर्ण अतीत को तथा उन नायकों को भुला बैठे हैं जिनके योगदान के कारण आज हमारा देश स्वतन्त्र है।

श्री शचीन्द्र नाथ बख्शी ने इन संस्मरणों को लगभग 40-45 वर्ष पूर्व लिखा था परन्तु ये आज भी उतने ही प्रासंगिक प्रतीत होते हैं जितने तब थे। ये संस्मरण आज भी नई स्फूर्ति जाग्रत् करने तथा देशभक्ति की भावना से अभिभूत करने में सक्षम हैं। स्वाधीनता आन्दोलन के इस गौरवपूर्ण इतिहास को जनसाधारण एवं विशेषकर वर्तमान युवा पीढ़ी के समक्ष प्रस्तुत करने के उद्देश्य से इन्हें संकलित कर 'वतन पे मरनेवालों का...' पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्री चन्द्रशेखर आज़ाद के शहीद होने के बारे में जनश्रुति एवं आम धारणा है कि अपने पिस्टल की अन्तिम गोली से वे स्वयं शहीद हो गए परन्तु श्री बख्शी व उनके सहयोगी क्रान्तिकारियों का विश्वास था कि चन्द्रशेखर आज़ाद, अल्फ्रेड पार्क में ब्रिटिश पुलिस की गोली से ही शहीद हुए। जेल से रिहा होने के पश्चात श्री बख्शी ने आज़ाद के पोस्टमार्टम की रिपोर्ट आदि का अध्ययन कर, इस तथ्य की पुष्टि कर ली थी। श्री चन्द्रशेखर आज़ाद के सहयोगी तथा क्रान्तिकारी श्री विश्वनाथ वैशम्पायन ने अपनी पुस्तक में विस्तार से इस विषय पर चर्चा की है तथा तथ्यों को उजागर किया है, परन्तु उनके शहीद होने के बारे में उपलब्ध तथ्यों की सरकारी स्तर पर सर्वदा उपेक्षा की जाती रही तथा आम धारणा परिवर्तित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। श्री आज़ाद के शहीद होने के सम्बन्ध में तथ्यों का वर्णन अन्त में किया गया है तथा वैशम्पायन जी की पुस्तक के सन्दर्भित पृष्ठों को परिशिष्ट में दे दिया गया है।

इस ऐतिहासिक दस्तावेज की भूमिका लिखने हेतु, श्री पीयूष कान्ति राय, जो अंग्रेजी दैनिक 'दि हिन्दू' के वरिष्ठ एवं विशेष संवाददाता रहे तथा सेवा-निवृत्ति के पश्चात वर्तमान में मासिक 'कलाकुंज भारती' के प्रबन्ध सम्पादक तथा नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स (इण्डिया) के अध्यक्ष हैं, के प्रति कृतज्ञता प्रगट करता हूँ। एक क्रान्तिकारी द्वारा अपने साथी क्रान्तिकारियों के संस्मरणों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने हेतु आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

–राजेन्द्रनाथ बख्शी

189-ए सुपर एमआईजी
एक्सप्रेस व्यू एपार्टमेण्ट
सेक्टर-93 नोएडा
9 अगस्त, 2008

अपनी बात

भारतवर्ष में त्याग का और दान का महत्त्व बहुत बड़ा है और हमेशा ही बड़ा रहा है। कोई भी अनुष्ठान चाहे बड़ा हो या छोटा, सामाजिक या धार्मिक स्तर का हो, तब तक पूरा नहीं माना जायगा, जब तक उसमें दान का यथायोग्य स्थान न हो। हमारी सभ्यता और संस्कृति ने हमें सिखाया है कि दान की मर्यादा सर्वोपरि है और इसी बुनियादी दृष्टिकोण और विश्वास पर हमारी मान्यतायें बनती चली आ रही हैं।

दान के साथ-साथ रहती है--त्याग की भावना। हम जीवन के हर पहलू पर, हर स्तर पर महत्त्व देते हैं—दान और त्याग को। यहाँ तक कि हमारे ऋषि कहते हैं—'त्यक्तेन भुञ्जीथा' अर्थात त्याग के माध्यम से ही भोग करो अथवा त्याग के माध्यम से ही अच्छा भोग किया जाना चाहिए या किया जा सकता है।

मुसलमानों में भी उसी प्रकार त्याग और दान का महत्त्व है। कुर्बानी की धार्मिक परम्परा के पीछे भी यही आदर्श था कि जो कुछ सबसे प्रिय व मूल्यवान वस्तु हो उसे कुर्बान किया जाये। दान दिये बिना मुसलमानों का भी पूरा अनुष्ठान अधूरा समझा जाता है, दान बिना उन्हें भी सबाब नहीं मिलता।

इसी पृष्ठभूमि में हमारे देश में द्रव्य व वस्तु दान, अर्थदान के साथ-साथ प्राणदान, विद्यादान, कन्यादान और आज ग्रामदान, श्रमदान, भूदान आदि तरह-तरह के दानों की परम्परा चली है।

'प्राणदान' की बात अगर ली जाये तो हमें मिलता है—मध्यकालीन राजपूत रमणियों का 'जौहरव्रत' जब सब पुरुष युद्ध में 'प्राणदान' करने की ठान लेते थे, तब स्त्रियाँ और बालायें एक विशाल अग्निकुण्ड में अपने को सामूहिक रूप से समर्पण कर देती थीं। ऐसी सामूहिक प्राणदान की मिसाल इतिहास में शायद कम ही मिलेगी।

हमारे देश को स्वतन्त्र करने की प्रचेष्टा में, अंग्रेजों से भारत को आज़ाद कराने की कोशिश में हमारे क्रान्तिकारियों का बलिदान भी निराला ही रहा है। आज भले ही उनके बलिदानों का इतिवृत्त दब गया हो, देश ने आज भले ही उन्हें भुला दिया हो, लेकिन यह बात सत्य है कि उनका बलिदान अपूर्व रहा है।

उन्नीसवीं सदी के अन्त में पूना के चाफेकर बन्धुओं से लेकर बंगाल के खुदीराम बोस, प्रफुल्ल चाकी, कन्हाई लाल, सत्येन, दिल्ली बम केस के बन्दी पंजाब के करतार सिंह आदि, काकोरी षड्यन्त्र केस के अशफाकउल्ला खाँ, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रोशन सिंह तथा रामप्रसाद बिस्मिल, लाहौर केस के सरदार भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव आदि कितने ही दर्जनों नौजवानों ने देश की बलिवेदी पर, फाँसी पर अपना प्राणदान दिया।

ब्रिटिश पुलिस से लड़कर गोली खाकर मरने वालों में बाघा जतीन और उनके साथियों का उदाहरण है। वे प्रथम जर्मन युद्ध के जमाने में सन् 1918 में उड़ीसा के बालासोर तट पर जर्मनी से बड़े पैमाने पर हथियार उतारकर विप्लव की तैयारी कर रहे थे। उसके बाद चटगाँव अस्त्रागार लूटने के दिनों में चटगाँव में अनगिनत देशभक्त विप्लवियों को ब्रिटिश पल्टन की गोलियों से मृत्यु-प्राप्ति और उसके बाद इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में काकोरी केस के फरारी चन्द्रशेखर आज़ाद की वीरगति सन् 1931 की ही तो बात है।

उसी चौथे दशक में बंगाल के मिदनापुर के जिला कलेक्टर एक के बाद एक लगातार तीन मजिस्ट्रेट विप्लवियों की गोली से मारे गये थे और बाद में झक मारकर, घबराकर ब्रिटिश सरकार को मिदनापुर के जिला मेजिस्ट्रेट के पद पर एक हिन्दुस्तानी को भेजना पड़ा था। उसी चौथे दशक में बंगाल के कुमिल्ला जिला के मेजिस्ट्रेट और कलेक्टर ने अपने भाई को पत्र में लिखा--मैं जिले का विधाता हूँ, सबसे बड़ा अफसर, लेकिन कैदी से भी बदतर हूँ। मेरा बंगला चारों तरफ काँटेदार तारों से घिरा है। दिन-रात सशस्त्र सन्तरियों का पहरा रहता है। मैं कहीं निकल नहीं सकता। बंगले पर कैदी के माफिक रहता हूँ। किसी सार्वजनिक स्थान पर जाना तो दूर रहा, मुझे हुक्म हुआ है कि बंगले में खुली जगह पर टहल भी नहीं सकता क्योंकि गोली से मार दिया जाऊँगा। मेरे बंगले में तलाशी दिये बिना कोई घुस नहीं सकता है, लेकिन इतना एहतियात रखने पर भी कोई गारंटी नहीं कि मैं बच जाऊँ।

यही जिला कलेक्टर अपने बंगले में शान्ति घोष और सुनीति चौधरी नाम की दो लड़कियों द्वारा मारे गये। चूँकि लड़कियाँ मात्र 14-15 साल की थीं, अतः

उन्हें आजन्म कालेपानी की सज़ा मिली। इसी तरह भारतवर्ष में सैकड़ों क्रान्तिकारियों को लम्बी-लम्बी सज़ायें मिलीं। कितनों ने लम्बी-लम्बी भूख हड़तालें कीं और यतीन्द्रनाथ दास आदि कई ने भूख हड़ताल में प्राण विसर्जित किये।

कई मौकों पर ऐसा भी हुआ है कि क्रान्तिकारीगण गोली से गम्भीर रूप से जख्मी होकर तड़प रहे हैं, मरणासन्न हैं और पुलिस उन्हें नहीं पहचान पा रही है और अंग्रेज अफसर पूछता है—नाम क्या है? बताओ, तुम तो वीरगति प्राप्त कर रहे हो, तुम्हारे देशवासियों को मालूम तो हो जाये कि तुम कौन हो।

उत्तर में जख्मी, मृत्यु के पथ पर अग्रसर क्रान्तिकारी मुस्कुराता है और कहता है—"Do not disturb me, let me die peacefully." वह नाम नहीं बताता है। उसे नाम नहीं चाहिए। उसे इस बात की प्रसन्नता है कि वह देश की स्वतन्त्रता के लिए कुछ कर गुजरा है। इतना ही उसके लिए काफी है। वह Unsung, unhonoured and unwept ही जाना चाहता है। उसे नाम की ख्वाहिश नहीं। उसी चौथे दशक में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ लड़ाई में बंगाल के क्रान्तिकारियों में बहुत से पकड़े जाने से बचने के लिए तेज जहर खाकर बलिदान हो गए।

बंगाल के सेक्रेटेरियट में सरकार के हेड-क्वार्टर, जिसे राईटर्स बिल्डिंग कहा जाता है, में एक दिन अकस्मात सूबे के इन्सपेक्टर जनरल, जेल के दफ्तर में हमला होता है और अंग्रेज इन्सपेक्टर जनरल गोली से मारा जाता है। आई जी को मारने के बाद जो नौजवान इस काम के लिए गये थे, उन्होंने तेज जहर खाकर खुदकुशी कर ली। उनमें से एक विनय गुप्त अस्पताल में बचा लिए गये और उन पर मुकदमा चला तथा उनको फाँसी हो गयी। उनके दो साथी अस्पताल जाने से पहले ही मृत्यु वरण कर चुके थे। बड़ी मुश्किल से उन क्रान्तिकारियों को पहचाना गया था। आई जी इसलिए मारा गया था क्योंकि उसका व्यवहार राजनैतिक कैदियों से कटु और कठोर था।

इसी ढंग से कई नौजवानों ने जहर खाकर अपना बलिदान दे दिया था। ऐसे ही तरीके से कुमारी प्रीतिलता वाद्देदार ने भी अपना बलिदान दिया था। चटगाँव अस्त्रागार लूट लिए जाने के बाद अंग्रेजों ने बदला लेने की भावना से चटगाँव निवासियों को बहुत परेशान और तंग कर रखा था। अंग्रेजों के उस अत्याचार का बदला लेने की नीयत से चटगाँव यूरोपियन क्लब पर एक रात को हमला किया गया और कई अंग्रेज अफसर मारे गये। उस हमले का नेतृत्व किया था कुमारी प्रीतिलता वाद्देदार ने और उसने कई अंग्रेजों को मार गिराया था। एक अंग्रेज मिलिटरी अफसर की गोली से जख्मी होने पर प्रीतिलता ने जहर खाकर अपना बलिदान कर दिया।

बलिदान का यह निरालापन और किसी देश में नहीं मिलता है। अपने को बिलकुल भुलाकर सब कुछ न्योछावर कर देने का ऐसा उदाहरण दुनिया में कहीं भी और नहीं दिखाई देता। मैजिनी गैरिबाल्डी की इटली में भी नहीं, न रूस के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों में और न चीन के क्रान्तिवादियों में। इस दिशा में भारतवर्ष के क्रान्तिकारियों ने दुनिया के सब देशों के सामने जो बलिदान प्रस्तुत कर दिया है, वह आदर्श है, अतुलनीय है, अपूर्व है।

इन आदर्श उदाहरणों के बावजूद, आज़ादी के बाद पिछले 15-16 सालों में धीरे-धीरे देश ने क्रान्तिकारियों को भुला दिया और अहिंसावाद को एक fetish* बना लिया। लोग यह समझने लगे कि अहिंसावाद एक सफल राजनीतिक सिद्धान्त है, न कि जन-आन्दोलन की एँक नीति और यह भी लोग सोचने लग गये थे कि अहिंसा के बल पर ही देश को स्वतन्त्र बनाये रखा जा सकता है।

इसी सन्दर्भ में हमने अपनी सैन्य शक्ति नहीं बढ़ाई। विश्व में शान्ति का प्रचार करते रहे। स्वतन्त्र भारत के सरहदी दायरे में (फ्रन्टियर्स में) हजारों मील, कई हजार मील की बढ़ोतरी होने के बावजूद हमने अपना फ्रन्टियर गार्डस् या 'मिलिटेरी पावर' नहीं बढ़ाया। विस्तारवादी चीन के साथ मैत्री और भाईचारे का सम्बन्ध कायम रखा और अपनी सेना की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में हमसे चूक हो गयी।

ऐसी परिस्थिति में अकस्मात पिछले अक्तूबर में चीन ने हमारे ऊपर सैनिक आक्रमण कर दिया, विशाल पैमाने पर। कई मोर्चों पर हमारी हार पर हार होती गई। सारा देश तिलमिला उठा, इस आकस्मिक प्रहार से। इसी चीन को अपना भाई मानकर, हम हिन्दी-चीनी भाई-भाई के नारे लगा चुके थे। इस विश्वासघात से सारे देश में चीन विरोधी आवाजें उठने लगीं और सारा देश एक हो गया, जैसा कभी नहीं हुआ था।

उन दिनों मैं उत्तर प्रदेश के बनारस शहर में था। वहाँ भी एक ऑल पार्टी मीटिंग हुई। उस सार्वजनिक सभा में उपस्थिति पन्द्रह-बीस हजार से ज्यादा रही होगी। चीन के खिलाफ बहुत आक्रोश था जनता में। मैंने उस दिन देखा कि वक्ताओं में एक आदमी भी ऐसा नहीं था जो युद्ध के बारे में कुछ भी तजुर्बा रखता हो और युद्ध की कुछ सच्ची जानकारी या अनुभव रखता हो। अतः मैंने उस दिन दो बातें जनता को समझायीं।

---

*fetish–inanimate object worshipped by savages

एक थी अनुशासन के बारे में। बिना मिलिटेरी डिसिप्लिन या सैन्य अनुशासन के कोई भी लड़ाई लड़ी नहीं जा सकती, लड़ाई में कामयाबी नहीं मिल सकती।

और दूसरी बात जिसका मार्मिक आग्रह मैंने किया था, वह थी—रक्तदान। मैंने जनता को समझाया—एक 'सोलजर' की ट्रेनिंग में कम से कम डेढ़ साल लगता है। हमारे सिपाही उस वक्त तक करीब दो हजार शहीद हो चुके थे या गुम हो गये थे। उस हिसाब से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि कोई आठ से दस हजार जख्मी हुए होंगे। उन जख्मी सिपाहियों का जख्म जल्द ठीक करके उन्हें फिर लड़ने के काबिल बनाने के लिए 'रक्तदान' चाहिए।

मैंने जनता से अपील की कि आप सैकड़ों की तादाद में सिविल अस्पताल जाकर अपना रक्तदान कीजिए ताकि लड़ाई कामयाबी से जारी रखी जाये। हमारे जख्मी सिपाही फिर से ठीक होकर बदला लेने की भावना लेकर लौटकर लड़ाई के मैदान में द्विगुणित उत्साह से जाकर लड़ें।

रुपये-पैसे तो आप दे ही रहें हैं और देंगे भी, लेकिन 'रक्तदान' इस वक्त निहायत जरूरी है।

मुझे मालूम था कि हमारी धरती है बलिदान की। दान की परम्परा हममें जन्मजात है और मैंने दूसरे दिन देखा—चार सौ से ऊपर व्यक्ति सिविल अस्पताल पहुँचकर लाइन में खड़े थे।

इसी प्रकार जरूरत पड़ने पर हमेशा हमारा देश हर प्रकार के बलिदान करने को तत्पर रहेगा। जरूरत है समुचित और योग्य नेतृत्व की। सही रास्ता दिखाने की और दिखाने वालों की। सही प्रचार की और सही संगठन की। बस, इसी की कमी है। केवल अहिंसा के बल पर देश स्वतन्त्र नहीं रह सकता, बलिदानी भारत को योग्य नेतृत्व चाहिए।

—शचीन्द्र नाथ बख्शी

यह लेख श्री शचीन्द्र नाथ बख्शी ने चीन द्वारा भारत पर आक्रमण किए जाने के पश्चात सन् 1963 में लिखा था और उस वक्त यह जितना प्रासंगिक था, 45-46 वर्षों पश्चात आज भी सम्भवतः उतना ही प्रासंगिक प्रतीत होता है।

प्रस्तावना

प्लासी के युद्ध में राबर्ट क्लाईव की अंग्रेजी फौज द्वारा नवाब सिराजुद्दौला की सेना को पराजित करने के पश्चात बंगाल पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन स्थापित हो गया। तत्पश्चात ईस्ट इण्डिया कम्पनी का बर्चस्व भारत जैसे विशाल देश पर राज करने का उदाहरण विश्व में कम ही देखने को मिलेगा। परन्तु एकता के अभाव, आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों की कमी व विश्वासघात के चलते अंग्रेजी शासन मजबूत होता गया।

भारत के सुस्थापित शिल्पों को समाप्त कर इंगलैण्ड में बने द्रव्यों को आयात करने के लिए मजबूर करना, खेतिहर किसानों को धान, गेहूँ इत्यादि फसलों के बजाय नील, जूट आदि पैदा करने के लिए बाध्य करना, लगान की दर चढ़ाकर एवं देशी रिसायतों को विभिन्न कूटनीतिक उपायों से अपने में शामिल करना एवं व्यापक आर्थिक शोषण करने के कारण पूरे भारत में अंग्रेजों के खिलाफ असन्तोष व्याप्त होने लगा। पराकाष्ठा तब हुई जब अंग्रेजों की नौकरी करने वाले भारतीय सिपाहियों को सुअर एवं गाय की चर्बी से युक्त कारतूस प्रयोग करने एवं धर्म परिवर्तन के लिए दबाव के कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी के खिलाफ भारतीय जनमानस में व्यापक अंग्रेज-विरोधी वातावरण बना। इसकी परिणति थी 1857 का पहला स्वतन्त्रता-संग्राम। परन्तु निर्धारित समय से पूर्व ही सिपाही मंगल पाण्डे द्वारा बराकपुर छावनी में अंग्रेज अधिकारियों पर आक्रमण कर देने से, समय से पूर्व ही संग्राम प्रारम्भ हो गया। एक केन्द्रीभूत ढाँचे के अभाव में व देशी रियासतों के आपसी द्वन्द्व इत्यादि के कारण 1857 का प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम असफल रहा। अंग्रेजों ने देश में अत्याचारों की पराकाष्ठा कर दी। गाँव के गाँव जला दिए गए, सैकड़ों को पेड़ों पर टाँगकर फाँसी दे दी गई अथवा तोप के सामने बाँधकर गोले से उनके चीथड़े उड़ा दिए गए।

इसके परिणामस्वरूप भारतीयों में असन्तोष की ज्वाला अन्दर ही अन्दर सुलगती रही। सन् 1885 में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई, परन्तु पूर्ण आजादी की माँग उन्होंने नहीं उठाई। इस बीच देश के युवा वर्ग में सशस्त्र क्रान्ति की भावना उभरने लगी। सन् 1905 में बंग-भंग आन्दोलन से सम्पूर्ण देश में देशभक्ति का एक प्रबल ज्वार आया और 'वन्देमातरम्' क्रान्ति का मूल मन्त्र बन गया। जलियाँवाला बाग का नर-संहार, खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी का बलिदान, चापेकर बन्धुओं का बलिदान, भगत सिंह, राजगुरु, करतार सिंह सराबा, रासबिहारी घोष के बलिदान तथा चटग्राम में हुई क्रान्ति से देश के नवजवानों को सशस्त्र क्रान्ति की प्रेरणा मिली। इन युवाओं के अलावा अन्य क्रान्तिवीरों ने 'गाँधीजी की अहिंसा, चरखा एवं असहयोग आन्दोलन से देश में आजादी आएगी, ऐसी धारणा को नकारा। उनमें एक अनन्य व्यक्तित्व था क्रान्तिकारी श्री शचीन्द्र नाथ बक्शी का। उन्हें श्रेय जाता है काकोरी रेल डकैती को सहयोगियों के साथ अंजाम देने का। उस डकैती से प्राप्त धन से जर्मनी से मँगाये गये अत्याधुनिक पिस्तौल माउजर एवं कोल्ट को भारत लाने में भी श्री बक्शी दादा की अहम भूमिका रही। इन माउजर एवं कोल्ट को क्रान्तिवीरों के बीच बाँटा गया जिससे काफी अंग्रेज अधिकारियों को मौत के घाट उतारा गया जिस कारण अंग्रेजों में दहशत पैदा हो गयी।

श्री बक्शी जी एवं उनके समविचार के क्रान्तिकारियों को मालूम हुआ कि माउजर एवं कोल्ट बहुत ही प्रभावी मार करने वाली पिस्टल हैं, जो जर्मनी में उपलब्ध हैं। परन्तु उन्हें ख़रीदने के लिए काफी धन की आवश्यकता थी। धन प्राप्त करने के निमित्त पहले कुछ भारतीयों के घर में डकैती डाली गई। बाद में यह रास्ता सर्वथा अनुचित लगा। तय किया गया कि अब कुछ सरकारी खजाने लूटे जाएँ। इस संकल्प के अनुसार 9 अगस्त 1925 को लखनऊ जिले के एक छोटे से रेलवे स्टेशन काकोरी में एक पैसेन्जर ट्रेन को रोककर गार्ड के डिब्बे में रखी तिजोरी तोड़कर धन निकालने की योजना बनी। यद्यपि कुछ क्रान्तिकारियों में इस योजना पर मतभिन्नता थी, परन्तु श्री बक्शी जी इस योजना को अमली जामा पहनाने पर अडिग रहे। इस डकैती को सफल बनाने में उनकी भूमिका काफी अहम रही। इस पुस्तक में उन्होंने काकोरी ट्रेन डकैती की घटना को विस्तार से लिखा है। काकोरी डकैती केस उस समय का बहुचर्चित केस के रूप में जाना जाता है। इस मुकदमे में चार क्रान्तिकारियों को फाँसी की सज़ा सुनाई गयी एवं उन्हें अन्ततः फाँसी पर लटकाया गया। वे थे श्री राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, श्री रोशन

सिंह, श्री अशफाकउल्ला खाँ एवं श्री रामप्रसाद बिस्मिल। श्री बक्शी को एक सरकारी गवाह श्री जगन्नाथ प्रसाद, जो उक्त पैसेन्जर ट्रेन के गार्ड थे और जिन्होंने जानबूझकर आइडेन्टीफिकेशन परेड में उनको नहीं पहचाना, जिस कारण वे फाँसी की सज़ा से बचे एवं आजन्म कारावास की सज़ा पायी।

जर्मनी से मँगाये गये शस्त्रों की डिलीवरी बंगाल की खाड़ी में तट से दूर बीच समुद्र में लेना था। एक सुप्रसिद्ध तैराक होने के नाते यह दायित्व श्री बक्शी जी ने बखूबी निभाया। यही माउजर एवं कोल्ट बाद में क्रान्तिकारियों के बहुत काम में आया। क्रान्तिवीर श्री चन्द्रशेखर आजाद के हाथ इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में अंग्रेजों से मुठभेड़ के समय एक कोल्ट पिस्तौल था जिससे वह पुलिस से अन्त लोहा लेते रहे। श्री बक्शी जी जेलों में भी राजनैतिक कैदियों को उचित सुविधा दिलाने के लए लम्बे समय एक अनशन आन्दोलन करते रहे एवं अपनी माँग मनवाकर ही रहे। सन् 1937 में उत्तर प्रदेश में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बनने के पश्चात वे जेल से रिहा हुए।

श्री शचीन्द्र नाथ बक्शी सन् 1962 में चीन के भारत पर आक्रमण से एवं उस सम्बन्ध में वामपंथियों के द्वारा चीनियों के पक्ष में वकालत से काफी खिन्न थे। सन् 1965 के भारत-पाक युद्ध से देश में जो देशभक्ति का ज्वार आया, उससे प्रभावित हो उन्होंने भारतीय जनसंघ की सदस्यता ग्रहण की। उन्हें लगा कि एकमात्र यही दल प्रगाढ़ देशभक्ति से उत्प्रेरित है। वह सन् 1969 में अपने जन्म एवं कर्मभूमि बनारस से उत्तर प्रदेश विधानसभा के लिए चुने गए।

विधानसभा के पाँचवर्षीय कार्यकाल के दौरान मैंने उन्हें सदन में काफी सक्रिय भूमिका अदा करते देखा। भारतीय जनसंघ विपक्ष में था, अतः शासन पर आक्रमण करने से वह कभी चूके नहीं एवं जनसाधारण की समस्याओं पर काफी मुखर रहे। मुख्यमन्त्री थे श्री चन्द्रभानु गुप्त। श्री बक्शी जी ने सदन में कभी छोटे-मोटे मसले नहीं उठाये। उनका भाषण व्यापक सार्वजनिक हितों के सन्दर्भ में ही होता था। कई बार स्पीकर द्वारा उन्हें अपना वक्तव्य संक्षेप में रखने के लिए कहने पर भी जब वह बोलते रहते तो सदन के तमाम सदस्य उनकी ओर से स्पीकर महोदय को कुछ और समय देने के लिए अनुरोध करते रहते थे, जो उनके लिए सबके मन में किनती श्रद्धा थी यह दर्शाता है।

पाँच वर्ष के कार्यकाल के दौरान ही कांग्रेस का विभाजन हुआ। मुख्यमन्त्री श्री चन्द्रभानु गुप्त अल्पमत में होते गये एवं इन्दिरा गाँधी समर्थक बहुमत थे। श्री गुप्त के बाद पण्डित कमलापति त्रिपाठी एवं बाद में श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा

उ. प्र. के मुख्यमन्त्री बने। तब दल बदल एक आम बात हो गई। यहाँ तक कि कुछ जनसंघ के विधायक पार्टी छोड़कर प्रलोभन में कांग्रेस में चले गये। इस पार्टी बदल पर मैंने उस देशभक्त क्रान्तिकारी को अत्यन्त मायूसी में देखा। एक बार उन्होंने मुझे सदन के लॉबी में बताया कि देश में अब राजनैतिक पतन की घृणित शुरुआत हो चुकी है। पद और पैसे के लिए राजनेता अब अपनी आत्मा बेचने जा रहे हैं। क्या होगा इस देश का भविष्य, यह ईश्वर ही जाने। इस महान क्रान्तिकारी, जिन्होंने अंग्रेजों के द्वारा दिए गए तमाम प्रलोभनों को ठोकर मार कर देश की आजादी के लिए आजन्म कारावास को स्वीकार किया, उनके लिए आजादी प्राप्त करने के बाद बढ़ते भ्रष्टाचार, सत्तालोलुपता एवं पतन की पराकाष्ठा असहनीय प्रतीत होते थे। साथ ही देशभक्त क्रान्तिकारियों के त्याग एवं बलिदान को जानबूझकर भुला देने की कुचेष्टा से उनमें असीम वेदना थी।

अपने साथी क्रान्तिकारियों के शौर्य को उन्होंने इस पुस्तक में लिपिबद्ध किया है जो आज की पीढ़ी को प्रेरित करने में अवश्य सक्षम होगा।

–पीयूष कान्ति राय

अनुक्रम

वर्ष 1958 में दिल्ली में हुए अखिल भारतीय क्रान्तिकारी सम्मेलन के अवसर पर लिया गया एक दुर्लभ चित्र



बायें से खड़े हुए–1. श्री लक्ष्मीकान्त शुक्ला (झाँसी कमिश्नर बम काण्ड में कालापानी) 2. (गोल टोपी लगाये हुए) बंगाल के क्रान्तिकारी नेता तथा स्वामी विवेकानन्द के अनुज डा. भूपेन्द्रनाथ दत्त 3. श्री मन्मथनाथ गुप्त (काकोरी काण्ड में 14 वर्ष कारावास) 4. श्री शचीन्द्र नाथ बख्शी (काकोरी काण्ड में आजीवन कारावास) 5. पं परमानन्द, झाँसी वाले (सिंगापुर क्रान्ति के नेता) 6. (बीच में बैठे हुए) मानिकतल्ला बमकाण्ड के नेता तथा योगी श्री अरविन्द घोष के भाई श्री बारीन्द्र घोष।

---

1. वर्ष 1958 में दिल्ली में हुए अखिल भारतीय क्रान्तिकारी सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए डा. भूपेन्द्रनाथ दत्त ने अध्यक्षीय भाषण में उपस्थित क्रान्तिकारियों से मार्मिक अपील की थी कि वे अपने संस्मरण व क्रिया-कलापों को अवश्य लिपिबद्ध करें अन्यथा वो सारा इतिहास उनके साथ ही चला जाएगा। उसी अपील के फलस्वरूप अन्य क्रान्तिकारियों के अतिरिक्त श्री शचीन्द्र नाथ बख्शी ने वर्ष 1962 से विभिन्न लेख व अपने संस्मरणों को लिखने का कार्य प्रारम्भ किया था।

जीवन-वृत्त

शचीन्द्र नाथ बख्शी भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्त्तक और महान् स्वातंत्र्य योद्धा रहे हैं। बख्शी जी का जन्म 27 दिसम्बर, 1900 को वाराणसी के एक सम्पन्न बंगाली परिवार में हुआ। मैट्रिक की परीक्षा उन्होंने एंग्लो बंगाली स्कूल से तथा इण्टरमीडिएट की परीक्षा क्वींन्स कालेज से दी। प्रारम्भ से ही आप कुशाग्रबुद्धि एवं प्रतिभाशाली थे। सामाजिक कार्यों में विशेष रुचि होने के कारण ही वे वाराणसी के 'हेल्थ इम्प्रूविंग एसोसिएशन' के मन्त्री रहे। उस समय चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन का उन पर इतना प्रभाव पड़ा कि 1921 में पढ़ाई छोड़ कर क्रान्तिकारी आन्दोलन में कूद पड़े।

1922 में बंगाल के बाढ़पीड़ितों की सहायता के लिए एक दल बनाकर उन्होंने जिन दिनों काशी में अर्थ संग्रह प्रारम्भ किया, उन्हीं दिनों उनका सम्बन्ध बंगाल के क्रान्तिकारी संगठन 'अनुशीलन समिति' के सदस्यों के साथ हुआ। अनुशीलन समिति की शाखा वाराणसी में खुली, तो वे उस संस्था में युवक नेता के रूप में शामिल हुए। उक्त शाखा का संगठन करने के लिए एक ऐसे व्यक्ति की खोज थी, जो युवकों का नेतृत्व एवं संगठन कर सके, वह उनके आने से पूर्ण हो गयी। बख्शी जी ने समिति की शाखा प्रारम्भ की और क्रान्तिकारियों के लिए भर्ती एवं प्रशिक्षण के केन्द्र स्थापित किये।

सन् 1923 तक समिति अधिक शक्तिशाली बन गयी। इस समय तक बख्शी जी की गतिविधियाँ बनारस के गुप्तचर विभाग को ज्ञात हो चली थीं और उक्त विभाग द्वारा उन पर चौबीस घण्टे निगरानी रखी जाने लगी। अतः मार्च सन् 1924 में उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र बनारस से बदलकर लखनऊ कर लिया। 1924 में ही अनुशीलन समिति और श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल के क्रान्तिकारी दल के विलयन से जब 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोशिएशन' का निर्माण हुआ, तो उन्होंने लखनऊ

में इस संस्था का सुदृढ़ संगठन बनाया। 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोशिएशन' का ध्येय भारत में गणतन्त्रात्मक शासन की स्थापना करना था। इसके लिए उपयुक्त संविधान बनाने की जिम्मेदारी वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने गये सदस्यों पर डाली जानी थी।

वाराणसी और लखनऊ में क्रान्तिकारियों का व्यापक एवं प्रभावी संगठन तैयार करने के बाद उनको झाँसी में भी संगठन का विस्तार करने के लिए भेजा गया। 1925 में उन्होंने श्री चन्द्रशेखर आजाद को झाँसी ले जाकर उनका अन्य क्रान्तिकारियों से परिचय कराया, तत्पश्चात् उत्तर प्रदेश के विभिन्न नगरों में क्रान्तिकारियों का संगठन बनाने के लिए उनका प्रान्तव्यापी दौरा प्रारम्भ हुआ। कुछ ही दिनों में सम्पूर्ण प्रदेश में क्रान्तिकारियों का एक शक्तिशाली एवं सजीव संगठन तैयार हो गया। चन्द्रशेखर आजाद को झाँसी में ही क्रान्तिकारी दल में बख्शी जी ने सम्मिलित कर लिया।

इसी बीच क्रान्तिकारियों ने माउजर पिस्तौल के अद्वितीय होने की जानकारी हासिल कर ली थी। अतः माउजर पिस्तौलों को जर्मनी से हासिल करने के लिए क्रान्तिकारियों ने अपने किसी साथी को जर्मनी भेजना तय किया। चूंकि शचीन्द्रनाथ बख्शी तैराकी संघ के मंत्री थे और काशी में उन्होंने लम्बी तैराकी प्रतियोगिता का शुभारम्भ किया था। लम्बी तैराकी में उनका जवाब नहीं था। दल के अन्य कुशल तैराक थे केशव चक्रवर्ती। संस्था की ओर से केशव चक्रवर्ती को तैराकी प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए जर्मनी भेज दिया गया, उद्देश्य था माउजर पिस्तौल हासिल करना।

केशव चक्रवर्ती जर्मनी से सही-सलामत वापस लौट आए। उन्होंने कई अदद 'माउजर' पिस्तौल भेजने की व्यवस्था जर्मन कार्गो से कर ली थी। उन दिनों भारत आने वाले जहाजों का विवरण कलकत्ता के 'स्टेट्समैन' अंग्रेजी दैनिक के कमर्शियल पेज पर शिपिंग इंटेलिजेन्स कालम में प्रकाशित होता था। शचीन्द्रनाथ बख्शी उत्सुकतापूर्वक नज़र रखते थे इसी कालम पर यह देखने के लिए कि आखिर उनका जहाज आ कब रहा है?

कुछ दिनों बाद जुलाई 1925 के अन्तिम सप्ताह में उक्त जहाज की खबर पढ़ते ही उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। लगभग एक महीने का समय था कॅनसाइनमेण्ट आने में और इसी बीच उसे छुड़ाने के लिए रुपये-पैसे का बन्दोबस्त भी करना था, जिससे समुद्र के अन्दर तीन मील जाकर जहाज से माल की डिलीवरी भी वहीं 'इंटरनेशनल वाटर्स' में ले लेनी थी।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के मुताबिक देश की समुद्री सीमा से बाहर का समुद्र किसी भी राष्ट्रीय नियम से मुक्त होता है, और उस सीमा के बाहर प्रत्येक जहाज की धरती उसी देश की धरती मानी जाती है, जिस देश का वह जहाज हो। तब भारत की समुद्र-सीमा तीन मील थी, अतः बिना किसी अड़चन के जर्मनी के ही विक्रय मूल्य पर इन पिस्तौलों का बण्डल वहीं छुड़ाया जा सकता था। यदि इसे कलकत्ता के बन्दरगाह पर लेते, तो 'सी' व 'लैण्ड' कस्टम्स विभागों द्वारा बड़ी छानबीन होती। सामान भी पकड़ा जा सकता था। इन्हीं सब उलझनों से बचने के लिए क्रान्तिकारियों ने बड़ी सूझबूझ से इस बात का फैसला किया कि समुद्र में तीन मील अन्दर प्रवेश करके माल की डिलीवरी वहीं नकद भुगतान करके ले ली जाए। फिर अँधेरा होने पर पार्सल भारत के किसी भी एकान्त स्थल पर लाया जाए।

माउजर पिस्तौलों की व्यवस्था के साथ-साथ क्रान्तिकारी संगठन का ज्यों-ज्यों विस्तार होता गया और साहसी तथा बलिदानी युवकों की टोलियाँ खड़ी होती गयीं, त्यों-त्यों संगठन पर आर्थिक बोझ बढ़ने लगा। इस कठिनाई को दूर करने के लिए स्थान-स्थान पर 'एक्शन्स' की योजनाएँ बनने लगीं। 'एक्शन्स' का तात्पर्य धन लूटने की योजनाएँ थीं, किन्तु ये योजनाएँ स्वयं अथवा व्यक्ति विशेष के लाभ के लिए न होकर, संगठन को मजबूत करने तथा गोली-बन्दूक, पिस्टल, रिवाल्वर आदि क्रय करने हेतु होने के कारण क्रान्तिकारी इन्हें 'एक्शन' कहा करते थे। श्री जोगेश चन्द्र चटर्जी के गिरफ्तार हो जाने के बाद उन्होंने श्री रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में एसोशिएशन की तरफ से क्रान्तिकारियों द्वारा डाली गयी सभी डकैतियों में प्रमुख भाग लिया, जिसकी चरम परिणति काकोरी षड्यन्त्र केस के रूप में हुई।

शाहजहाँपुर से सटा पीलीभीत का एक गाँव बमरौली। घर था एक महाजन का जो चीनी मिल का मालिक भी था। इस एक्शन की योजना रोशन सिंह ने बनायी थी एवं वे इसमें सम्मिलित थे। इसी एक्शन में सबसे अधिक धन मिला था। इसके बाद तथा काकोरी एक्शन से पूर्व बिचपुरी, सराय महेश व द्वारकापुर के एक्शन्स भी हुए थे। इन सभी में चन्द्रशेखर आज़ाद सम्मिलित हुए थे। शचीन्द्र नाथ बख्शी व रामप्रसाद बिस्मिल इन सभी एक्शन्स में सम्मिलित थे तथा सभी बिस्मिल के नेतृत्व में ही सम्पन्न हुए थे। इन एक्शन्स से अधिक धन प्राप्त न हो सका था तथा इनमें ग्रामीणों द्वारा विरोध भी अधिक हुआ था, फलस्वरूप उन पर गोलियाँ भी चलानी पड़ी थीं तथा कुछ गाँववाले मारे भी गये थे। इसी कारण बाद में यह निर्णय लिया गया था कि भविष्य में किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति

लूटी नहीं जायेगी। अतः धन-संग्रह के उद्देश्य से सन् 1925 में लखनऊ में काकोरी रेलवे स्टेशन के पास सरकारी खजाना लूटने का निर्णय लिया गया।

9 अगस्त 1925 को काकोरी स्टेशन के पास तत्कालीन दस क्रान्तिकारियों ने पिस्तौल की नोक पर ट्रेन रोककर सरकारी खजाना लूट लिया। इस काण्ड में सम्मिलित दस क्रान्तिकारियों में सर्वश्री रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, अशफाकउल्ला खाँ, शचीन्द्र नाथ बख्शी, चन्द्रशेखर आजाद, मुकुन्दी लाल, मन्मथनाथ गुप्त, बनवारीलाल, केशव चक्रवर्ती व मुरारीलाल थे। बख्शी जी के साथ अशफाकउल्ला खाँ तथा राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी दूसरे दर्जे के डिब्बे में बैठे थे। इन लोगों पर ट्रेन रोकने की तथा बख्शी जी को गार्ड को अपने कब्जे में ले लेने की जिम्मेदारी थी, जिसे उन्होंने घटना के अन्त तक बखूबी निभाया।

इस लूट से प्राप्त धन द्वारा जर्मनी के 'माउजर' पिस्तौलों की डिलीवरी लेने शचीन्द्रनाथ बख्शी और राजेन्द्र लाहिड़ी कलकत्ता पहुँचे। शचीन्द्रनाथ बख्शी बंगाल की खाड़ी में तैरकर तीन मील गये। नकद भुगतान करके वहीं जहाज में 'माउजर' पिस्तौलें हासिल कीं और फिर अँधेरे में उसी प्रकार तैरकर समुद्र-तट पर आ लगे और जर्मनी से प्राप्त ये शस्त्रास्त्र क्रान्तिकारियों में वितरित किए गये। वे ही गोलियाँ अंग्रेज अधिकारियों के लिए बाद में स्थान-स्थान पर प्राणनाश का कारण बनीं।

काकोरी काण्ड के इस साहसिक कार्य से जहाँ जनता में नये उत्साह का संचार हुआ, वहीं अंग्रेज शासकों में घबराहट व आतंक पैदा हुआ। इस काण्ड से सम्बन्धित सभी क्रान्तिकारियों की धर-पकड़ प्रारम्भ हुई। सर्वश्री चन्द्रशेखर आजाद, शचीन्द्र नाथ बख्शी और अशफाकउल्ला खाँ के अतिरिक्त अन्य सहयोगी गिरफ्तार कर लिये गए और उन पर 'काकोरी षड्यन्त्र' के नाम से ऐतिहासिक मुकदमा चलाया गया। ये तीनों फरार हो गये और बख्शी सहित अन्य क्रान्तिकारी नेता दूसरे प्रदेशों में प्रवेश कर गये तथा पुलिस की नजरों से बचकर संगठन का कार्य करते हुए युवकों में क्रान्ति का मन्त्र फूँकते रहे।

बख्शी जी ने सिन्ध, पंजाब, मध्य प्रदेश, बंगाल और बिहार में भ्रमण करके क्रान्तिकारियों की एक विशाल शृंखला तैयार की। इस प्रकार देश का युवक समाज माँ भारती को बन्धनमुक्त कराने के लिए तैयार हुआ। क्रान्ति की ज्वाला अब नगरों तक ही सीमित न रह सकी। गाँव-गाँव और घर-घर में यह आग सुलगने लगी। प्राण हथेली पर लेकर लड़ते रहने की भावना दिनोंदिन बढ़ती गयी। देश के अन्दर युवकों में स्वाधीनता की तड़पन पैदा करने वाले श्री चन्द्रशेखर आजाद एवं भगत सिंह की शृंखला में शचीन्द्र नाथ बख्शी का नाम भी चिरस्मरणीय रहेगा।

अशफाकउल्ला खाँ भी काकोरी केस में फरार थे, किन्तु काकोरी काण्ड से सम्बन्धित अधिकतर क्रान्तिकारियों को गिरफ्तार किया जा चुका था तथा उनके विरुद्ध मुकदमा भी प्रारम्भ हो चुका था। चन्द्रशेखर आजाद कभी पकड़े नहीं गए और 27 फरवरी, 1931 को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में अंग्रेजों से लड़ते हुए शहीद हो गये।

अशफाकउल्ला खाँ दिल्ली में गिरफ्तार कर लिये गए एवं बख्शी जी सन् 1927 में भागलपुर में बन्दी बना लिये गए। अशफाकउल्ला खाँ तथा उनकी गिरफ्तारी के बाद दोनों पर काकोरी सप्लीमेण्टरी केस चला, जिसमें अशफाकउल्ला खाँ को फाँसी तथा पहचान के अभाव में बख्शी जी को आजन्म कारावास का दण्ड मिला। काकोरी मुख्य केस में रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी व ठाकुर रोशन सिंह को फाँसी की सज़ा मिली।

क्रान्तिकारी मस्तिष्क एवं योग्य संगठक होने के कारण आप जेल में भी चुप न रह सके और राजनीतिक बन्दियों को उचित सुविधाएँ दिलाने के लिए शासन से लगातार संघर्ष करते रहे। इसी उद्देश्य से उन्होंने बरेली सेण्ट्रल जेल में 53 दिनों का ऐतिहासिक अनशन किया, जिसके फलस्वरूप राजनीतिक बन्दियों को जेल में 'बी' क्लास उपलब्ध कराया गया। इस ऐतिहासिक अनशन में मन्मथनाथ गुप्त व राजकुमार सिन्हा भी उनके साथ थे।

पुनः सन् 1937 की गर्मियों में नैनी सेण्ट्रल जेल में अपने सभी राजनीतिक बन्दियों की सामूहिक मुक्ति के लिए उन्होंने ऐतिहासिक उपवास किया। इस उपवास के सैंतालिसवें दिन श्री राजेन्द्रप्रसाद ने वर्धा से सीधे जाकर उनसे मुलाकात की और आश्वासन दिया कि सात प्रान्तों में बनने वाली कांग्रेसी सरकारें सभी राजनीतिक बन्दियों को रिहा कर देंगी। इसी आश्वासन पर उन्होंने अनशन भंग किया था। तत्पश्चात् कांग्रेस सरकार ने काकोरी केस के सभी बन्दियों को रिहा किया। जेल से मुक्त होने के बाद भी वे स्वतन्त्रता के लिए सतत संघर्ष करते रहे।

श्री बख्शी व श्री योगेशचन्द्र चटर्जी जेल से मुक्त होने के बाद अपने रिश्तेदारों से मिलने बंगाल पहुँचे, किन्तु बंगाल सरकार ने राजाज्ञा जारी की कि ये दोनों बंगाल नहीं जा सकते और यदि वे बंगाल की सीमा में हैं तो तुरन्त बंगाल की सीमा से बाहर चले जायें तथा आदेश का उल्लंघन करने पर इन्हें गिरफ्तार कर लिया जायेगा। श्री चटर्जी अपनी अस्वस्थ माँ से मिलने के लिए गये थे। एक बार बंगाल सरकार ने आपको प्रवेशाज्ञा भी दे दी, परन्तु वे अपने मित्रों व प्रियजनों से मिल भी न पाये थे कि आप पर मि. हक की हुकूमत का हुक्म तामील हुआ 'बंगाल छोड़ दीजिए।'

श्री बख्शी को बंगाल सरकार ने कलकत्ता में एक नोटिस तामील किया था, जिसमें उन्हें बंगाल प्रान्त छोड़ देने का आदेश दिया गया था। श्री बख्शी का कहना था कि बंगाल जाने का उनका एकमात्र उद्देश्य 12 वर्षों बाद अपने मित्रों तथा रिश्तेदारों से मिलना था। अतः बंगाल सरकार द्वारा उन्हें दिया गया निर्वासन का दण्ड न्यायतः उचित नहीं है और इसलिए उन्होंने उसे तोड़ने का निश्चय किया। फिर भी श्री शरत्चन्द्र बोस, श्री सुभाष बोस के अनुज व अन्य नेताओं की सलाह पर श्री बख्शी बंगाल सरकार के सेक्रेटेरिएट के वैदेशिक विभाग में गये और वहाँ उन्होंने निर्वासन के आदेश को दस दिन या एक सप्ताह तक मुल्तवी करने को कहा, ताकि वे बंगाल के अन्दरूनी भागों में जाकर अपने उन रिश्तेदारों से भी मिल सकें, जो कलकत्ता में नहीं रहते। पर असिस्टेण्ट सेक्रेटरी इस बात पर राजी नहीं हुए। इस पर श्री बख्शी ने इस बात की धमकी दी कि वे इस आदेश को तोड़ रहे हैं। सेक्रेटेरिएट छोड़ने के आधे ही घण्टे बाद वे बंगाल कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के दफ्तर में 20 मई सन् 1938 को गिरफ्तार कर लिये गए और वहाँ से पुलिस की निगरानी में धनबाद स्टेशन लाकर उन्हें रिहा कर दिया गया। पुलिस ने उन्हें बनारस छावनी तक के लिए ड्योढ़े दर्जे का टिकट दे दिया था।

29 मई सन् 1938 के 'प्रताप' में श्री गणेश शंकर विद्यार्थी जी ने लिखा—ये आज्ञा बंगाल सरकार के हृदय-दौर्बल्य को सूचित करती है। इन आज्ञाओं में मानवता की हत्या की गई है, उस इन्सानियत का गला घोंटा गया है जो माता को पुत्र से मिलाती है, बिछड़े हुए मित्रों की मिलन घटिका को रंगीन और सुनहरी बनाती है। यदि बख्शी बंगाल में ठहर जाते, यदि श्री योगेश भी अपनी माता से मिलने के बाद अपने प्रान्त में कुछ दिन रह जाते तो कलकत्ता उलट न जाता, बंगाल सेक्रेटेरिएट की इमारतों पर बिजली न गिर पड़ती। आखिर बंगाल गवर्नमेण्ट को कुछ अपनी सच्चाई सद्भावना में विश्वास होना चाहिए, परन्तु जिन प्रान्तीय हुकूमतों की नींव राष्ट्रीयता पर आधारित नहीं है, उनके काँपते हुए हाथों से, इससे बेहतर हुक्मों की उम्मीद नहीं की जा सकती।

बख्शी जी के अन्दर अखण्ड एवं पूर्ण स्वाधीनता की कल्पना थी; किन्तु सन् 1947 में खण्डित स्वतन्त्रता के कारण उनके अन्तःकरण को गहरी ठेस लगी और असीम वेदना हुई। सन् 1947 के बाद भी स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों की क़ांग्रेस शासन द्वारा सदैव उपेक्षा की गयी। इससे उन्हें अपार कष्ट हुआ। सन् 1962 के चीनी आक्रमण के समय भारत की वैदेशिक नीति की विफलता

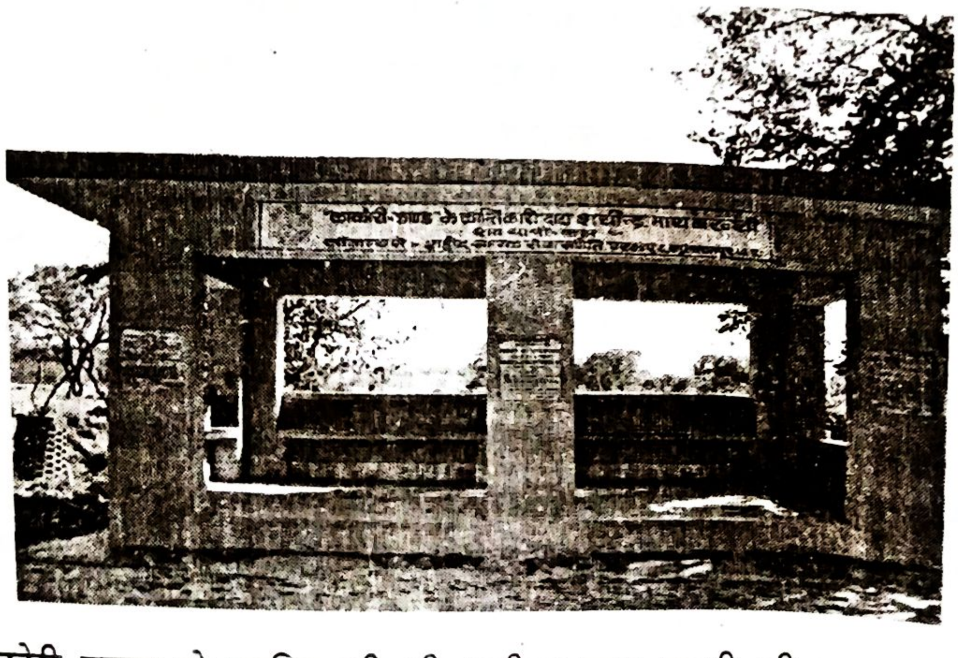
तथा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के देशद्रोही रुख के कारण उनका क्रान्तिकारी एवं राष्ट्रभक्त हृदय विचलित हो उठा तथा विशुद्ध राष्ट्रीय एवं शक्तिशाली संगठन की खोज करने लगा। सन् 1965 में पाकिस्तानी आक्रमण के समय भी उन्होंने देखा कि बाह्य आक्रमण को कुचलने के लिए सारे दलीय मतभेद भुलाकर देश की रक्षा के लिए सर्वाधिक तड़पन यदि किसी संगठन में है, तो वह तत्कालीन भारतीय जनसंघ में ही है। अतः भारतीय जनसंघ के दार्शनिक एवं आर्थिक विचारों से प्रभावित होकर सन् 1965 में ही वे इस विशुद्ध राष्ट्रीय संगठन के सदस्य बन गये और इसी के माध्यम से देशसेवा में तल्लीन हो गये। उनका दृढ़ मत था कि भारत विभाजन एवं खण्डित स्वाधीनता, कांग्रेस की दुर्बल नीतियों का ही परिणाम है।

सन् 1969 में वाराणसी दक्षिणी क्षेत्र से वे विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हुए एवं पाँच वर्षों तक विधायक रहे। वर्ष 1975 के पश्चात् वृद्धावस्था के कारण वे सक्रिय राजनीति से पृथक रहकर अपने संस्मरण व लेख आदि लिखते रहे। सन् 1980 में अपने कनिष्ठ पुत्र के वाराणसी से स्थानान्तरण के फलस्वरूप बख्शी जी सुलतानपुर आ गये तथा सुलतानपुर में रहते हुए कुछ स्थानीय युवकों से उनका परिचय हुआ जो न सिर्फ उत्साही, कर्मठ व परिश्रमी थे बल्कि देशप्रेम व सेवा-भावना से ओतप्रोत थे। उन्हें ऐसे ही युवकों की तलाश रहा करती थी। उन युवकों ने वर्ष 1982-83 में 'शहीद स्मारक सेवा समिति' सुलतानपुर गठित की, जिसके तत्त्वावधान में शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद, भगत सिंह व नेताजी सुभाषचन्द्र बोस आदि की मूर्तियों की स्थापना की गई।

सुलतानपुर में रहते हुए 84 वर्ष की अवस्था में 23 नवम्बर, 1984 को उनका वहीं देहावसान तथा दाह-संस्कार हुआ। उनकी स्मृति में सुलतानपुर के श्मशान घाट पर **'शचीन्द्र नाथ बख्शी विश्राम स्थल'** का निर्माण शहीद स्मारक सेवा समिति, सुलतानपुर द्वारा कराया गया है। गरीब व असहाय व्यक्तियों के सहातार्थ धन एकत्रित कर उनका इलाज कराने तथा आवश्यकता पड़ने पर समिति के सदस्यों द्वारा कई-कई बार रक्तदान कर उनकी चिकित्सा की गई। वर्तमान में शहीद स्मारक सेवा समिति, सुलतानपुर समाजसेवा की एक अग्रणी संस्था बनकर त्याग व सेवा-भावना की परम्परा का निर्वहन ही नहीं कर रही है, बल्कि असहाय, निर्धन व समाज के हर वर्ग के जरूरतमन्द व्यक्तियों की आवश्यकतानुसार चिकित्सा व सहायता कर देशसेवा का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर रही है।



क्रान्तिकारी श्री शचीन्द्र नाथ बख्शी
(27-12-1900 23-11-1984)



काकोरी काण्ड के क्रान्तिकारी श्री शचीन्द्र नाथ बख्शी की पुण्य स्मृति में सुलतानपुर के श्मशान घाट पर शहीद स्मारक सेवा समिति द्वारा निर्मित 'शचीन्द्र नाथ बख्शी शवयात्री कक्ष'

काकोरी काण्ड
(एक अविस्मरणीय घटना)

काकोरी षड्यन्त्र केस अपने समय का सबसे बड़ा क्रान्तिकारी मुकदमा था। इस मुकदमे में बीस देशभक्तों को सज़ा मिली थी। रामप्रसाद बिस्मिल, रोशन सिंह, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी तथा अशफाकउल्ला खाँ को फाँसी दे दी गयी और वे शहीद हो गये। शचीन्द्र नाथ सान्याल और मुझे आजन्म काले पानी की सज़ा मिली। मन्मथनाथ गुप्त को चौदह साल, राजकुमार सिन्हा, रामकृष्ण खत्री, जोगेश चटर्जी आदि को दस-दस साल और शेष को सात-सात और पाँच-पाँच साल की सज़ायें दी गयीं। अपील में कुछ लोगों की सज़ायें बढ़ायी भी गयी थीं।

इस मुकदमे में हमें फँसाने के लिए सरकार ने कोई कसर नहीं छोड़ी। लाखों रुपये फीस देकर सरकार ने सबसे अच्छे वकीलों को नियुक्त किया। स्पेशल मजिस्ट्रेट, स्पेशल जज भी नियुक्त किये गए।

सफाई के लिए भी प्रभावशाली डिफेन्स कमेटी बनायी गयी थी, जिसमें पण्डित मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, गोविन्द बल्लभ पन्त, मोहनलाल सक्सेना आदि थे। सफाई के वकीलों में कलकत्ता के प्रसिद्ध बैरिस्टर बी. के. चौधरी, प्रोफेसर कृपाशंकर हजेला, हरकरण नाथ मिश्र तथा चन्द्रभानु गुप्त थे, जो बाद में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री भी बने थे।

इस षड्यन्त्र केस का 'काकोरी केस' के नाम से मशहूर होने का आधारभूत कारण यह था कि हरदोई-लखनऊ के दरम्यान जिस स्टेशन के पास पैसेन्जर ट्रेन को रोककर रेलवे का खजाना लूटा गया था, उस स्टेशन का नाम काकोरी था। लखनऊ के स्पेशल मजिस्ट्रेट तथा स्पेशल जज ने उस अप्रसिद्ध छोटे-से स्टेशन को इतिहास के पन्नों में लाकर बैठा दिया।

9 अगस्त, 1925 के दिन 8 डाउन पैसेन्जर ट्रेन गार्ड जगन्नाथ प्रसाद के चार्ज में थी। ट्रेन डकैती से सम्बन्धित सरकारी गवाहों में जिसने सर्वाधिक समय तक क्रान्तिकारियों को देखा था, वह था गार्ड जगन्नाथ प्रसाद। वह डकैती शुरू होने के वक्त से लगातार पैंतीस मिनट तक देखता रहा। शेष गवाहों में से किसी ने भी हमें दो-चार सेकेण्ड से ज्यादा नहीं देखा। कुछ लोगों ने डकैती शुरू होने से पहले हमें साधारण मुसाफिर की स्थिति में कुछ क्षणों तक देखा था।

वस्तुतः घटना इस प्रकार थी–

सन् 1925 तक उत्तर प्रदेश में क्रान्तिकारी संगठन मजबूत हो गया था और संगठन में तेजी भी आ गयी थी। जुलाई के अन्त में हमें खबर मिली कि जर्मनी से पिस्तौलों का चालान आ रहा है। कलकत्ता बन्दरगाह में पहुँचने से पहले ही नकद रुपया देकर उसे प्राप्त करना था। एतदर्थ काफी रुपयों की आवश्यकता पड़ी और पार्टी के सामने डकैती के अलावा कोई अन्य चारा नहीं था।

चूँकि पार्टी निर्णय कर चुकी थी कि भविष्य में किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं लूटी जाएगी, इसलिए लखनऊ के पास ट्रेन रोककर सरकारी खजाना लूटने की योजना बनायी गयी। इसकी रूपरेखा सुनकर नौजवानों की तबीयत फड़क उठी। उन दिनों नौजवान साथी बहुत चंचल हो उठे थे और कुछ कर गुजरने के लिए उतावले हो रहे थे। **''सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है....''** वे गाने लग गये थे और उनका मन उसी ऊँचे सुर में बँध गया था। मुझे स्पष्ट याद है कि साथियों में मन्मथनाथ गुप्त, कुन्दनलाल, चन्द्रशेखर 'आजाद' आदि ने मेरे सामने प्रश्न उठाया था कि अगर रेल का गार्ड अंग्रेज हुआ, तो क्या उसे जिन्दा छोड़ा जाएगा? मेरा उत्तर था–नहीं, उसके लिए एक कारतूस खर्च किया जाएगा। जब साथियों ने खुशियाँ जाहिर करनी शुरू कीं, तब मैंने अपने होंठों पर एक उँगली रख उन्हें रोककर कहा था–चुप, यह बात अपने में ही रखनी चाहिए। यदि रामप्रसाद को इसका पता चल गया और कहीं उसने मना कर दिया, तो सब करा-कराया बण्टाढार हो जाएगा।

यहाँ पर मैं यह बता देना उचित समझता हूँ कि हम क्रान्तिकारी लोग इतने खूँखार नहीं थे। बात दरअसल यह थी कि अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ हमारे मन में संवेदना इतनी तीव्र थी कि बदला लेने की भावना सदा जाग्रत् रहती थी।

केवल अकेले अशफाकउल्ला खाँ ने इस योजना का विरोध किया और आखिर तक करते रहे। उनका कहना था कि हमारा दल अभी इतना मजबूत नहीं है कि हम ब्रिटिश साम्राज्य को खुली चुनौती दे सकें। लेकिन कोई यह चेतावनी सुनने

के मूड में नहीं था। अशफाक यही रट लखनऊ तक लगाते रहे और काकोरी स्टेशन तक पहुँचकर भी रामप्रसाद से बोले—मान जाओ राम, अब भी लौट चलो, यह काम नहीं होना चाहिए।

नतीजा यह हुआ कि डकैती का काम शुरू करने का भार रामप्रसाद ने मेरे ऊपर डाला। मैंने रामप्रसाद को बताया कि अशफाक और राजेन्द्र लाहिड़ी को साथ लेकर मैं सेकेण्ड क्लास की जंजीर खींचकर ट्रेन रोक दूँगा तथा उतरकर गार्ड को पकड़ लूँगा। रामप्रसाद ने इस सुझाव को पसन्द किया और बताया कि वह बचे हुए छह साथियों को लेकर तीसरे दर्जे में बैठेंगे और ट्रेन रुकने पर हम लोगों से आ मिलेंगे।

जब मैंने काकोरी स्टेशन पर लखनऊ के लिए तीन सेकेण्ड क्लास के टिकट खरीदने के लिए नोट बढ़ाया, तब असिस्टेंट स्टेशन मास्टर घूमकर मेरे चेहरे को गौर से देखने लगा। उसे महान् आश्चर्य हुआ कि इस-छोटे से स्टेशन से तीन सेकेण्ड क्लास के टिकट खरीदने वाला यह व्यक्ति कौन है ! मेरे हाथ में रूमाल था और मैं अनायास दूसरी ओर मुँह फेरकर रूमाल से मुँह पोंछने लगा। जब उसने मुझे तीन टिकट और बचे पैसे लौटाए उस वक्त भी वह मुझे घूर-घूरकर देखता रहा, किन्तु मैंने उसे फिर भी मौका नहीं दिया और मुँह पोंछते हुए ही एक हाथ से टिकट और पैसे लेकर मैं चल दिया। मैंने प्लेटफार्म पर जाकर अशफाक और राजेन्द्र को इशारे से बुलाकर अपने साथ रहने के लिए कहा।

पैसेन्जर ट्रेन आयी। हम तीनों सेकेण्ड क्लास का एक खाली डिब्बा देखकर बैठ गये।

गाड़ी चल दी। इतने में एक मुसाफिर डिब्बे में आकर मेरे पास बैठ गया। मैं फौरन घूमकर जंगले के बाहर देखने लगा। सामने के बर्थ पर अशफाक और राजेन्द्र बैठे थे। डिब्बे में बिजली की रोशनी हो रही थी। जब ट्रेन डिस्टेण्ट सिग्नल के पास पहुँच गयी, मैंने अपने साथियों की तरफ मुखातिब होकर पूछा—जेवरों का बक्सा कहाँ रह गया है?

अशफाक ने तुरन्त जवाब दिया—ओ हो, वह तो काकोरी में ही छूट गया है। इतने में मैंने अपने पास लटकती हुई जंजीर खींच दी। मेरे बाद राजेन्द्र लाहिड़ी ने भी अपने पास की जंजीर खींच दी। जंजीर खींचने के बाद मैंने फौरन उठकर दरवाजा खोला और बाहर खड़ा हो गया।

गाड़ी रुक गयी। हम तीनों उतर पड़े तथा काकोरी की ओर चल पड़े। तीन-चार डिब्बों को पार करने पर गार्ड साहब मिले, जो हमारी तरफ आ रहे थे। उन्होंने पूछा—जंजीर किसने खींची?

मैंने चलते-चलते बताया कि मैंने खींची है। गार्ड मेरे साथ हो लिया और उसने मुझे रुकने को कहा। उत्तर में मैंने बताया—काकोरी में हमारा जेवरों का बक्सा छूट गया है, हम उसे लेने जा रहे हैं।

इतने में हम लोग गार्ड के डिब्बे तक पहुँचकर रुक गये। तब तक हमारे अन्य साथी भी वहाँ पहुँच गये थे। हमने पिस्तौल के फायर के साथ मुसाफिरों को आगाह किया कि कोई मुसाफिर न उतरे, क्योंकि हम सरकारी खजाना लूट रहे हैं।

इतने में मेरी निगाह गार्ड साहब पर पड़ी, जो मेरे बगल में ही खड़े थे और इंजन की तरफ नीली बत्ती दिखा रहे थे। मैंने उनकी पसली में पिस्तौल की नली लगा दी और एक हाथ से उनकी बत्ती छीन ली। बत्ती को जमीन पर पटकते हुए एक ठोकर मारकर मैंने गार्ड से कहा—गोली मार दूँगा। नीली बत्ती क्यों दिखा रहा था?

गार्ड जगन्नाथ प्रसाद ने हाथ जोड़ते हुए गिड़गिड़ाकर कहा—हुजूर ! मेरी जान बख्श दीजिए।

मैंने उसे डाँटकर कहा—घास पर लेट जाओ। तब तक घास से न उठो जब तक मैं न कहूँ। यदि बीच में उठे तो जहन्नुम रसीद कर दिए जाओगे।

गार्ड तुरन्त घास पर लेट गया।

तब तक लोहे का सन्दूक गार्ड के डिब्बे से ढकेलकर नीचे गिरा दिया गया और उसे तोड़ा जाने लगा। मैं डिब्बे के पायदान का सहारा लेकर गार्ड की ओर पिस्तौल ताने खड़ा रहा।

मेरे ऐसे पाँच मिनट तक खड़ा रहने के बाद रामप्रसाद ने एकाएक मेरा हाथ पकड़कर अँधेरे में खींच लिया और कहा—कर क्या रहे हो? सारी रोशनी तुम्हारे चेहरे पर पड़ रही है और गार्ड तुमको पहचान रहा है, जबकि और सब साथी अँधेरे में हैं।

मैं तब गार्ड के डिब्बे में चढ़ गया और बत्तियाँ बुझाने की कोशिश करने लगा, किन्तु स्विच मुझे ढूँढ़ने पर भी नहीं मिला। तब मैंने पिस्तौल के कुन्दे से सारे बल्ब फोड़ डाले और नीचे उतर आया।

रामप्रसाद की यह बात--गार्ड आपको पहचान रहा है—मेरे मन में चुभ गयी।

लोहे का सन्दूक बड़ी मुश्किल से टूटा। यह अशफाकउल्ला खाँ की ताकत की करामात थी। ऐक्शन शुरू होने के पहले तक हर तरह से विरोध करने के बावजूद अशफाक ने डकैती शुरू होने पर पूरी तरह साथ दिया।

इन कामों में करीब 35 मिनट लग गये। जब चलने की तैयारी हुई, तब मैंने रामप्रसाद से कहा—सूबेदार साहब, आप लोग बढ़ें। सौ-सवा सौ गज जाकर रुक जाइएगा और सीटी बजाइएगा। मैं आ जाऊँगा। तब तक मैं ज़रा गार्ड से निपट लूँ।

सभी साथी चले गये। मैं अकेला गार्ड जगन्नाथ प्रसाद के पास खड़ा था। सामने ट्रेन खड़ी थी। सारी फिजा शान्त और निःस्तब्ध। मैं दो-तीन मिनट चुप खड़ा रहा। हमारे सब साथी अँधेरे में ओझल हो गये थे। उनके पैरों की आहट भी धीरे-धीरे मद्धिम हो चली थी। जब मैंने खामोशी को भंग कर शान्त स्वर में अंग्रेजी में कहा—वेल गार्ड साहब, डेड मैन कैन नॉट स्पीक। जिसका मतलब था—मुर्दा आदमी बोल नहीं सकता। मैंने गार्ड से यह भी कहा—आपने मुझे बिजली की रोशनी में बहुत देर तक देखा है और पहचाना भी है। पुलिस कार्यवाही में आप मुझे पहचानेंगे। इसलिए आपको क्यों न खत्म कर दूँ, ताकि पहचानने का झगड़ा ही खत्म हो जाए। मैं ये सब बातें धीरे-धीरे बहुत शान्ति से बोलता रहा। गार्ड साहब अपने सामने मौत का नजारा देखकर हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगे और बोले—हुजूर ! मैं आपको कतई नहीं पहचानता हूँ, मुझे मत मारिए।

मैंने कहा—सिर्फ एक कारतूस का खर्च है और सब संकट खत्म हो जाएगा।

गार्ड साहब बड़ी आजिजी से बोले—मैं आपको कैसे समझाऊँ कि मैं आपको कभी नहीं पहचानूँगा।

मैंने पूछा—पुलिस के जोर देने पर भी नहीं?

उन्होंने कहा—कभी भी नहीं।

मैंने फिर पूछा—यह आपकी प्रतिज्ञा है?

उन्होंने जोर देकर कहा—जी हुजूर, यह मेरी प्रतिज्ञा है और अटल प्रतिज्ञा है।

मैंने कहा—ठीक है, ऐसी परिस्थिति में मैं आपकी जान बख्शने को तैयार हूँ, लेकिन क्या सबूत है कि आप इस प्रतिज्ञा को भंग नहीं करेंगे?

गार्ड साहब बहुत जोर देकर बोले—हुजूर, कुछ भी हो जाए, मैं इस प्रतिज्ञा पर अटल रहूँगा और आपको नहीं पहचानूँगा।

मैंने कुछ सोचा और पूछा कि वह ईश्वर को मानते हैं कि नहीं?

उनके हामी भरने पर और 'जी हाँ' कहने पर मैंने कहा—इस वक्त मेरे और आपके बीच जो कुछ बातचीत हुई, उसका साक्षी आपका ईश्वर है। आपने ईश्वर को साक्षी करके यह प्रतिज्ञा की है कि आप मुझको नहीं पहचानेंगे।

इतने में साथियों की सीटी सुनायी दी। मैंने कहा—ऑल राइट, गार्ड साहब,

आपकी जान बख्श दी। मेरे जाने के बाद उठिएगा और आधे घण्टे बाद गाड़ी को आगे बढ़ाइएगा। यह कहकर मैं चल दिया।

इस घटना के एक साल छह महीने बाद मैं बिहार प्रान्त के भागलपुर शहर में गिरफ्तार हुआ। इस बीच में मेरे बहुत से साथी गिरफ्तार हो गये थे। मेरा भी वारण्ट निकल चुका था और मैं फरार हो गया था। मुझे गिरफ्तार करानेवाले को कई हजार इनाम देने की घोषणा की जा चुकी थी। लखनऊ में काकोरी षड्यन्त्र का मुकदमा चल रहा था, जिसमें मुखबिरों के बयानों से बहुत से भेद खुल चुके थे। इकबाली मुलजिम बनवारीलाल बता चुका था कि ट्रेन डकैती में सेकेण्ड क्लास में अशफाकउल्ला, राजेन्द्र लाहिड़ी और मैं था। बनवारी भी ट्रेन डकैती के दस व्यक्तियों में था। बनवारीलाल के बयान से यह जाहिर हो चुका था कि सेकेण्ड क्लास से उतरने के बाद गार्ड से किया गया मेरा वार्तालाप उसने सुन लिया था। रेलवे का डाक्टर चन्द्रपाल गुप्ता, जो हमारे डिब्बे में आ गया था, राजेन्द्र लाहिड़ी और अशफाक की शिनाख्त कर चुका था। एक मैं ही बाकी बचा था।

मेरी गिरफ्तारी के बाद मैं भागलपुर से सेण्ट्रल जेल, लखनऊ लाया गया। लखनऊ में राजनीतिक कैदी के विशेष व्यवहार के अधिकार पर जेलवालों से मेरा झगड़ा हुआ। इस सिलसिले में मैंने भूख हड़ताल प्रारम्भ कर दी।

गिरफ्तारी के पहले फ़रारी हालत में बीमारी के कारण मैं काफी दुर्बल हो चुका था। इस अनशन ने मुझको और भी कमजोर बना दिया। अनशन के पाँचवें या छठे दिन मेरी शिनाख्त कराने की कार्यवाही की गयी।

मजिस्ट्रेट को मालूम था कि मैं अनशन कर रहा हूँ। उन्होंने आकर मुझसे पूछा—क्या शिनाख्त की कार्यवाही स्थगित की जाए?

मुझको मजिस्ट्रेट से मालूम हुआ कि सवा सौ या डेढ़ सौ आदमी से शिनाख्त कराने में घण्टा-सवा घण्टे से ज्यादा नहीं लगेगा। मैंने अन्य सब परिस्थितियों का विचार कर मजिस्ट्रेट से कहा—तमाम स्टेशनों से इतने आदमी इकट्ठे होकर परेशान हो रहे हैं। मैं इनके लिए घण्टा-सवा घण्टा तकलीफ झेल लूँगा। शिनाख्त की कार्यवाही खत्म करा दीजिए।

इस कार्यवाही के लिए जेल के एक अहाते में मजिस्ट्रेट के सामने 5 या 6 कैदियों के साथ मुझको खड़ा किया गया।

मैं लाइन में खड़ा-खड़ा मजिस्ट्रेट से हँसी-मजाक कर ही रहा था कि मुखबिर बनारसी लाल आया और मुझे पहचान लिया। उसके पीछे इकबाली मुलजिम बनवारी लाल आया और उसने भी मुझे हँसते हुए पहचान लिया। तब मैं बहुत गम्भीर

हो गया। दो-चार और गवाह आये, लेकिन कोई भी मुझे नहीं पहचान सका। मुखबिर इन्दुभूषण आया। उसने भी कई चक्कर काटे। सबके चेहरे बहुत गौर से अध्ययन करने के पश्चात् भी मुझको पहचान नहीं सका। उसकी आँखों में देखकर मैंने महसूस किया, वह सचमुच मुझे नहीं पहचान रहा है। मेरे जिस चेहरे से वह परिचित था, उसमें और वर्तमान में असमानता के कारण वह भी मुझे नहीं पहचान सका।

और कई गवाहों के गुजरने के बाद जगन्नाथ प्रसाद मेरे सामने आये। उनके आते ही मैंने उन्हें पहचान लिया। जब वह मेरे सामने से गुजरे तब उनकी आँखों में भी पहचानने की झलक-सी देखी, लेकिन वह मुझे न पहचानने का अभिनय करते हुए आगे बढ़ गये। दो चक्कर लगाने के बाद उन्होंने मजिस्ट्रेट से कहा—इनमें तो नहीं है।

मजिस्ट्रेट ने फिर से गौर करने को कहा। उसने और दो चक्कर मेरे सामने लगाये। इस बार भी मैंने उनकी आँखों में पहचानने की झलक देखी। लेकिन उन्होंने मेरे बगल वाले व्यक्ति का हाथ पकड़ा। फिर गार्ड साहब बाहर भेज दिये गये।

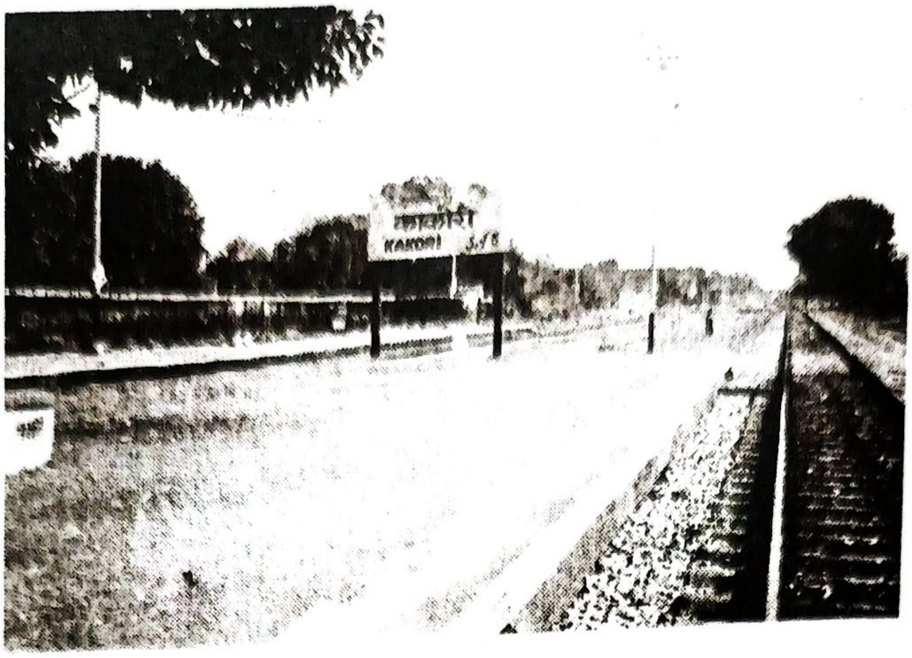
गार्ड जगन्नाथ प्रसाद के चले जाने के साथ-साथ मेरे मानसपटल पर चलचित्र की भांति 9 अगस्त, 1925 की सारी घटनाएँ रह-रहकर उभरने लगीं।

काकोरी सप्लिमेण्टरी षड्यन्त्र केस में अशफाक को फाँसी दे दी गयी और मुझको जन्मकैद की सज़ा मिली। जमाना गुजर गया। यू0 पी0 की सेण्ट्रल जेलों में बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़ने के बाद और बहुत सारी भूख-हड़ताल करने के बाद मैं रिहा हुआ। मेरे सब साथी भी रिहा हुए।

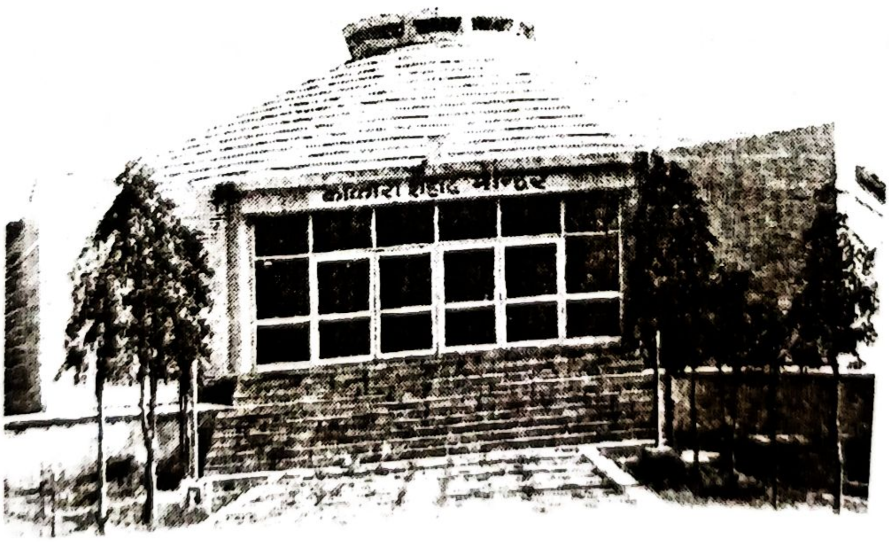
उस वक्त अपने प्रान्त में कांग्रेस की मिनिस्ट्री थी, जिसने हमें रिहा किया। मैं कांग्रेस में शामिल हुआ और धीरे-धीरे यू0 पी0 सूबा कांग्रेस कमेटी, लखनऊ में आफिस सेक्रेटरी हो गया।

सन् 1938 की बात है। मैं प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति पं0 जवाहरलाल नेहरू के कहने से रायबरेली के कांग्रेसियों के आपसी झगड़े को तय कराने वहाँ गया हुआ था और वहाँ के सब झगड़ों की जाँच करके लखनऊ लौटने के लिए रायबरेली स्टेशन पर बैठा था। प्लेटफार्म पर पंजाब मेल का इंतजार करते हुए एक बेंच पर बैठकर मैं अखबार पढ़ रहा था।

इतने में एक रेलवे अफसर मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। उसके सफेद सूट को मैं देख रहा था। मेरा नाम पुकारकर नमस्ते करने पर जब मैंने सिर उठाया, तब देखा कि वही चिरपरिचित गार्ड जगन्नाथ प्रसाद खड़े हैं।



काकोरी काण्ड में क्रान्तिकारियों के क्रिया-कलापों का मूक
दर्शक काकोरी का रेल-पथ



भारत के स्वाधीनता संग्राम की अविस्मरणीय घटना काकोरी
काण्ड में ट्रेन से खजाना लूटने
के स्थल पर निर्मित स्मारक, काकोरी, लखनऊ

14 वर्ष बीत जाने पर भी मैंने उन्हें फौरन पहचान लिया। उनकी मूँछें और बढ़ गयी थीं तथा उनमें कुछ सफेदी भी आ गयी थी। मैंने हँसकर कहा—हैलो गार्ड साहब, आप मुझे भूले नहीं हैं।

गार्ड जगन्नाथ प्रसाद ने उसी पुराने लहजे में उत्तर दिया—नहीं हुजूर, इस जिन्दगी में मैं आपको कभी भूल नहीं सकता।

वीर शहीद रोशन सिंह

प्रसिद्ध 'काकोरी षड्यन्त्र केस' में जिन चार अभियुक्तों को फाँसी की सज़ा दी गयी थी, उनमें रोशन सिंह भी थे। मुकदमे के लम्बे दौरान में, किसी क्रान्तिकारी या उनके किसी वकील के मन में लेशमात्र भी इस सन्देह का उदय नहीं हुआ था कि रोशन सिंह को भी फाँसी हो सकती है।

मुकदमा विशुद्ध राजनीतिक मुकदमा था। अभियोग से राजनीतिक धारा हटा लेने पर कोई डकैती का आरोप किसी हालत में किसी के ऊपर नहीं सिद्ध हो सकता था। इस कारण मुकदमे के परिणाम का अनुमान भी राजनीतिक दृष्टिकोण से ही किया जाता था और काकोरी केस में रोशन सिंह को कोई राजनीतिक महत्त्व नहीं दिया गया था। समझा जाता था कि उन्हें पाँच साल से अधिक का दण्ड नहीं मिलेगा। लेकिन रोशन सिंह के बारे में यह अनुमान पूरी तरह गलत निकला।

स्पेशल सेशन जज, लखनऊ ने सन् 1927 के अप्रैल महीने में सज़ा सुनाते समय रोशन सिंह को दफा 121 ए यानी "बादशाह को ब्रिटिश भारत से तख्त से महरूम करने की कोशिश और साजिश" में पाँच साल की सज़ा सुनाई। इण्डियन पैनल कोड की दफा 120 बी यानी "उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए षड्यन्त्र" करने के लिए भी पाँच साल की सज़ा दी, और दफा 396 यानी "डकैती मय कत्ल"—बमरौली डकैती के जुर्म में फाँसी यानी मौत की सज़ा दी।

रोशन सिंह को भी सबसे बड़ा दण्ड !—एक बिलकुल अप्रत्याशित बात थी। सभी दंग रह गये थे। साथ में शाहजहाँपुर के रामप्रसाद बिस्मिल तथा बनारस के राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी को भी फाँसी की सज़ा सुनाई गयी थी। लेकिन उसमें आश्चर्य की बात नहीं थी। सबको मालूम था कि काकोरी केस में अगर किसी एक को भी फाँसी की सज़ा हुई तो वह व्यक्ति रामप्रसाद बिस्मिल होगा। क्रान्तिकारी पार्टी में प्रान्त के 'वायोलेन्स' यानी सब हिंसावादी 'एक्शन' के इंचार्ज की हैसियत से

हिंसात्मक कार्यों की जिम्मेदारी उन पर आ पड़ती थी। दोनों 'मुखबिर' शाहजहाँपुर के ही थे। इन दोनों के बयानों ने शाहजहाँपुर के महत्त्व को आवश्यकता से ज्यादा बढ़ा दिया था।

दूसरे फाँसी के दण्ड के लिए राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी का अनुमान किया गया था। वारण्ट निकलते ही राजेन्द्र लाहिड़ी बनारस से फरार हो गये थे और कुछ दिनों बाद बंगाल में एक 'बम' फैक्टरी में कई नौजवानों के साथ पकड़े गये थे। उस फैक्टरी में बहुत से तैयार बम-गोले थे और वे सब बड़े खतरनाक किस्म के थे। बंगाल पुलिस को मालूम हो गया था कि उन बम-गोलों को बनाने वाले विदेश में शिक्षाप्राप्त, अनुभवी और विशेषज्ञ नलिनी गुप्त थे। नलिनी गुप्त रूस से लौटे थे और "कानपुर कम्युनिस्ट षड्यन्त्र केस" में भागे हुए फरार थे। नलिनी गुप्त और यतीन दास (जो बाद में अनशन कर शहीद हुए थे) किसी काम से बाहर गये हुए थे, वे पकड़े नहीं गये। राजेन्द्र लाहिड़ी उस केस में दस साल सज़ा पाकर लखनऊ लाये गये थे। उस बम-गोले की फैक्टरी की सज़ा के कारण राजेन्द्र लाहिड़ी भी ज्यादा खतरनाक होकर सामने उभर आये थे। वैसे, वास्तव में राजेन्द्र लाहिड़ी से ज्यादा खतरनाक कई लोग थे जिनकी साख उस समय तक के पार्टी के सक्रिय खतरनाक कामों की सूची में राजेन्द्र लाहिड़ी से अधिक थी।

अशफाकउल्ला खाँ को मुख्य केस में इन लोगों के साथ दण्ड नहीं मिला। वे मेरे साथ अलग मुकदमे में थे जिस पूरक मुकदमे (सप्लीमेण्टरी केस) का निर्णय तीन महीने बाद सुनाया गया था। ऐसी परिस्थिति में भी–रोशन सिंह के फाँसी के दण्ड पाने की कोई कल्पना न रहने पर भी–रोशन सिंह फाँसी का दण्ड सुनकर बिलकुल भी विचलित नहीं हुए थे। इसका मार्मिक वर्णन हमारे साथी मन्मथनाथ गुप्त ने अपने क्रान्तिकारी जीवन से सम्बन्धित लेखों में लिखा है।

इसमें कोई दो मत नहीं है कि रोशन सिंह एक महावीर योद्धा तथा बलिदानी व्यक्ति थे। इसी रूप में ही रोशन सिंह वर्णित भी किये गए हैं। लेकिन रोशन सिंह का सही मूल्यांकन आज तक नहीं हुआ है और सही मूल्यांकन किये बिना इतिहास अधूरा रह जाता है। काकोरी-युग का सच्चा इतिहास लिखने के लिए सब घटनाएँ वास्तविक रूप में सामने आ जानी चाहिए।

पहला प्रश्न यह है कि कब और कैसे रोशन सिंह क्रान्तिकारी दल "हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन" में सम्मिलित हुए?

सन् 1921 के असहयोग आन्दोलन में शाहजहाँपुर के जो थोड़े से लोग जेल गये थे, उनमें रोशन सिंह एक प्रमुख व्यक्ति थे। सज़ा काटते हुए बरेली जेल

में मेरठ के असहयोगी विष्णुशरण दुबलिश से रोशन सिंह का परिचय और घनिष्ठता हुई। उस परिचय ने ही रोशन सिंह को बाद में क्रान्तिकारियों से मिला दिया और रोशन सिंह ही रामप्रसाद बिस्मिल को हमारी क्रान्तिकारी पार्टी में लाये।

बात यों थी—शचीन्द्रनाथ सान्याल को जब सन् 1923 के आरम्भ में मालूम हुआ कि बंगाल की अनुशीलन पार्टी ने बनारस में क्रान्तिकारी संगठन का काम जोरों से चला रखा है, तो वे भी चौकन्ने हो गये। शचीन्द्रनाथ सान्याल को बनारस षड्यन्त्र के मामले में सन् 1915 में आजन्म कालेपानी की सज़ा मिल चुकी थी। सन् 1920 में देशबन्धु चित्तरंजन दास की लिखा-पढ़ी और मध्यस्थता से शचीन्द्र सान्याल अण्डमान से छोड़ दिये गये थे और इलाहाबाद आकर विवाह करके गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत कर रहे थे। आप ''बन्दी जीवन'' नाम से अपनी क्रान्तिकारी जीवन की आत्मकथा लिख रहे थे और बंगाली मासिक पत्रों में प्रकाशित करा रहे थे। उनमें देशभक्ति की लगन और आग थी। वे कब चुप बैठने वाले थे? बनारस में अनुशीलन पार्टी की गतिविधि देखकर वे भी मैदान में कूद पड़े और संगठन करने लगे।

शचीन्द्र सान्याल एक पुराने और धाकड़ संगठनकर्ता थे; और थोड़े ही समय में उन्होंने इलाहाबाद, कानपुर, बरेली, मेरठ तथा शाहजहाँपुर को संगठित कर डाला। मेरठ के विष्णुशरण दुबलिश, रोशन सिंह को जेल के परिचय के कारण क्रान्तिकारी संगठन में लाये और रोशन सिंह ने रामप्रसाद बिस्मिल को शचीन्द्रनाथ सान्याल से मिलाया। सान्याल बाबू ने रामप्रसाद को देखते ही उनमें हिंसात्मक कामों के नेता के लक्षण परिलक्षित कर लिये। इस विषय पर दोनों में खूब बातचीत हुई।

उन दिनों रामप्रसाद ने शाहजहाँपुर में सिल्क की बुनाई का कारोबार फैला रखा था। अच्छा-खासा व्यापार था। उन्होंने कम से कम एक साल का समय माँगा। सन् 1924 के मध्य तक अपना सारा कारोबार लपेटने के बाद ही क्रान्तिकारी दल में सक्रिय भाग लेने का वादा किया।

उस समय तक अशफाकउल्ला खाँ शाहजहाँपुर के कांग्रेसी क्षेत्रों में एक अच्छे वक्ता के रूप में उभर चुके थे वे एक सच्चरित्र और प्रतिभाशाली युवक नेता के रूप में माने जाते थे। स्वराज पार्टी के चुनाव में काम करने वाले वक्ताओं में अशफाक प्रमुख थे। अशफाक रामप्रसाद को बहुत परेशान भी करने लग गये थे कि क्रान्तिकारी संगठन किया जाए। रोशन सिंह भी जब कभी शहर आते थे, रामप्रसाद से मिला करते थे और बराबर रामप्रसाद को वादे की याद दिलाते थे।

मैं पहले पहल शाहजहाँपुर में रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक तथा रोशन सिंह

से सन् 1924 के पूर्वार्द्ध में मिला जब मैं वहाँ जोगेश चटर्जी के साथ पहुँचा था। इससे थोड़े ही दिन पहले शचीन्द्रनाथ सान्याल ने जोगेश और रामप्रसाद का परिचय करवा दिया था। उस समय तक रामप्रसाद ने अपना व्यवसाय बेच दिया था। कारखाने का थोड़ा ही सामान बच रहा था। उसे भी बेच-बाचकर सारा कारोबार समाप्त करने की चेष्टा कर रहे थे।

हम (मैं और जोगेश चटर्जी) रामप्रसाद के घर पर ही ठहरे थे। मेरी, जोगेश चटर्जी और रामप्रसाद की लगातार कई दिनों तक बातचीत हुई। पार्टी के संगठन के बारे में मैं सबसे ज्यादा बोलता था। उन दिनों के संगठन की बातें मेरे इर्द-गिर्द जैसे टपकती रहती थीं। खैर, रामप्रसाद अपनी बात पर अटल रहे और उन्होंने सारे कारोबार को पूरी तरह से लपेटने के बाद ही सक्रिय होने की बात कही। यह काम सितम्बर तक खत्म करने का उनका वचन था।

अशफाक और रोशन सिंह से भी हम मिले। रोशन सिंह अवस्था में हम सबसे बड़े ही नहीं, काफी बड़े थे। मेरी संस्कृति ने मुझे बड़ों का सम्मान करना सिखाया था। लेकिन रोशन सिंह को मजाक करके उमर के व्यवधान को चन्द मिनट के परिचय में ही मिटा देते देखा। बात-बात में जेल जीवन की चक्की, कोल्हू आदि कड़े परिश्रम की बातें आ गयीं। बड़े मजे में वे सुनाते गये—अपने निराले ढंग से। कहते-कहते यह भी हँसते हुए कह गये—"कांग्रेस के आन्दोलन में सज़ा क्या कोई सज़ा है? सिर्फ साल-डेढ़ साल की सज़ा! कागज भी खराब होता है। सज़ा का पता अब चलेगा।"

देखने में रोशन सिंह का व्यक्तित्व रामप्रसाद और अशफाक के आकर्षक व्यक्तित्व जैसा न था, और न उनके चेहरे से अशफाक और रामप्रसाद जैसा कठोर ब्रह्मचर्य ही टपकता था। इसके विपरीत, उनके साधारण चेहरे से, उनकी कुछ धँसी हुई आँखों से मालूम पड़ता था कि जीवन का उन्होंने भोग भी किया है। उनकी आँखों की चमक से, प्रसन्नचित्त और रसिकतापूर्ण बातों से जाहिर होता था कि जीवन की सब यथार्थता को वे अनायास स्वीकार करते हैं। उससे मुँह नहीं मोड़ लेते हैं। उनमें कोई कट्टरता नहीं, वैसा कोई बन्धन भी नहीं। हर हालत में खुश!

उसके बाद मैं शाहजहाँपुर आता-जाता रहा।

एक बार शाहजहाँपुर में रामप्रसाद के घर पर रोशन सिंह मिले। वहाँ से हम तीनों नदी किनारे जाकर एक निर्जन स्थान पर बैठ गये। रामप्रसाद ने पार्टी के व्यापक संगठन के बारे में बताने को कहा। विषय मेरा प्रिय था। मैंने खूब विस्तार से बातचीत की। रोशन सिंह बीच-बीच में कुछ सवाल भी पूछते जाते

थे और मैं साफ करता जाता था। मैंने बताया कि हमारा संगठन इतना शक्तिशाली हो गया है कि हम उत्तर प्रदेश के किसी भी ऐसे एक जिले के हेडक्वार्टर, जिसमें मिलिटरी छावनी न हो, जैसे प्रतापगढ़, रायबरेली या पीलीभीत पर अधिकार कर सकते हैं। संगठन का आकार बढ़ने पर दो, चार, दस जिलों पर कब्जा हो सकता है। यही क्रान्ति की प्रचेष्टा है। हम कामयाब हों चाहे न हों, इस प्रचेष्टा में ही देश आगे बढ़ जाएगा। रामप्रसाद बराबर केवल सुनते रहे, कुछ बोले नहीं और मैंने खूब बातें कीं।

इस गम्भीर वातावरण में कुछ अनजान आदमी पास से गुजरे। हम खामोश हो गये। रोशन सिंह ने निस्तब्धता भंग की और बोले—आइए, कुछ फड़कती हुई चीज सुनाइए।

पहले मेरी समझ में नहीं आया। फिर जब समझा कि गाने की बात कह रहे हैं, तब मैंने कहा कि मुझे गाना बिलकुल नहीं आता है। तब उन्होंने रामप्रसाद से गाना गाने को कहा—वह भी कुछ फड़कती हुई चीज।

रामप्रसाद ने एक उर्दू गज़ल सुनायी। एक आदि रसात्मक प्रेमसंगीत। रामप्रसाद ने खूब दिल खोलकर गाया और उसमें काफी दर्द भर दिया। गीत खत्म हुआ—एक कोमल और करुण मूर्च्छना पर।

गीत समाप्त होने पर हम मौन रहे। रामप्रसाद के मुँह से वह प्रेम संगीत मुझे कुछ अटपटा-सा लगा। मैं सोच रहा था—कहाँ यह कठोर ब्रह्मचारी, सिर्फ एक समय भोजन करने वाला रामप्रसाद, और कहाँ आदिरस में सराबोर यह प्रेम संगीत। इतने में रोशन सिंह मजे में चिल्ला उठे—"लूट ले बेटी...."

और बाकी वाक्य को पूरा किया बड़े तपाक से और खूब जोर से चिल्लाकर—रामप्रसाद ने। और फिर दोनों हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। हँसने में मैंने भी साथ दिया।

अनजान तीन-चार आदमी जो दूर जाते हुए गीत सुनने को खड़े हो गये थे, हँसते हुए यह कहकर चल दिये—"चलो, सब पिये हुए हैं।"

फिर हम लोगों में बमरौली की बातचीत हुई। किस स्टेशन पर उतरना पड़ेगा, वहाँ से कितनी दूर जाना होगा। थाना बमरौली से कितनी दूरी पर है। जिससे जबरदस्ती चन्दा लेना है—यानी जिसके घर डकैती डालना है—वह क्या है आदि। और रोशन सिंह ने सारी योजना विस्तार से बतायी। वह सारी योजना रोशन सिंह की ही थी।

दूसरे दिन हम लोग चल दिये। इस दल में हम कोई 12 या 13 आदमी थे। सब पार्टी के सक्रिय सदस्य थे। शाहजहाँपुर के रामप्रसाद, अशफाक तथा

रोशन सिंह को छोड़कर और सब बनारस के ही थे। शाहजहाँपुर से सटे हुए पीलीभीत जिले के गाँव बमरौली में यह काम हुआ। घर था एक महाजन का जो कि चीनी मिल का मालिक भी था।

अधिक विस्तार में न जाकर इतना बताना काफी है कि सब कुछ योजना के अनुसार हुआ। विरोध का सामना करने के लिए छत पर डटे हुए पहरा देने लगे रोशन सिंह, रामप्रसाद और अशफाक और शेष लोग मकान के अन्दर थे। मैं पाँच-सात मिनट सब कुछ देखता रहा। मैंने तभी हस्तक्षेप किया जब एक नौजवान साथी ने एक स्त्री के मस्तक पर पिस्तौल के कुन्दे से वार किया, जिससे खून बह निकला। वह स्त्री बता नहीं रही थी कि धन कहाँ गड़ा है। मैंने साथी को रोककर वहाँ का नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया। उस स्त्री के एक लड़के को सामने लाकर जब मैंने उस स्त्री को डराया कि न बताने पर इसे गोली मार दूँगा, तब उसने वह जगह बता दी जहाँ रुपया जमीन में गड़ा था। सारी बातें सँभल गयीं। मकान के अन्दर शान्ति से सारा काम हो गया। लेकिन बाहर बड़ा विरोध हुआ। गोली चलानी पड़ी। आदमी जख्मी हुए। एक मरा भी।

कई मील चलकर हम सुस्ताने बैठे। इस कार्य ने हमें थका दिया था। ऐसा कार्य यों ही थका देता है। युद्ध में उत्तेजना और थकान दोनों हैं। उस समय भी रोशन सिंह को विनोदप्रिय और लापरवाह जैसा पाया। सुस्ताते हुए, दो सौ गज पर हिलती हुई किसी वस्तु को दिखाकर मैंने रोशन सिंह से पूछा—"उस पर निशाना लगा सकते हैं आप?"

उन्होंने उत्तर दिया—"वह तो गाय है। उससे आगे और सौ डेढ़ सौ गज पर आदमी मालूम पड़ता है। उसे अभी ठण्डा कर सकता हूँ। लेकिन आप जाकर देख आवें—वह कोई लुगाई तो नहीं है।"

मैंने यों ही कहा—"लुगाई होने से क्या फर्क पड़ता है?"

उनका जवाब मिला—"लुगाई को नहीं मारूँगा। एक लुगाई मरने से तीन मर सकते हैं। शायद एक गोद में हो, और क्या सबूत उसके पेट में भी दूसरा तैयार नहीं हो रहा है।"

मैंने कहा—"आपको लुगाई की बहुत याद आती है।"

उनका उत्तर मिला—"क्यों न हो? दो लुगाई जो अपनी हैं। आपके पास कितनी हैं?"

मैंने कहा—"माफ कीजिए, मुझे नहीं चाहिए।"

फिर रोशन सिंह ने कहा—"पछतावा तो नहीं है?"

मेरे पूछने पर कि पछतावा कैसा, उन्होंने कहा--"एक कहावत जो है, दिल्ली के लड्डू वाली।"

इसी ढंग से वे बातें करते रहे। उन्हें उस समय भी मैंने गम्भीर होते नहीं देखा।

लेकिन वह चौकन्ने थे। निगाह उनकी चारों तरफ रही। दूर-दूर तक वह देखते रहे। बमरौली ऐक्शन उन्हीं का संगठित था। उस वक्त भी वह हम लोगों के मार्गदर्शक थे। पूरी जिम्मेदारी उनके ऊपर थी।

बात करते हुए वह खड़े हो गये--यह कहकर कि बहुत आराम कर लिया अब चला जाए। और कई मील चलकर रेलवे लाइन तक हमें पहुँचाकर और हम सबको रामप्रसाद के सुपुर्द कर वे अकेले दूसरी तरफ चल दिये--अपने घर की तरफ।

उसके बाद रामप्रसाद सबको शाहजहाँपुर शहर तक पैदल लाये। अपराह्न तीन बजे के लगभग हम सब स्टेशन पर उतरे थे और दूसरे दिन दोपहर बारह बजे तक शहर पहुँचे। सबका बुरा हाल था। सबके पैर सूज गये थे। रामप्रसाद बिस्मिल भी शिथिल पड़ गये थे। केवल अशफाक सुस्थिर थे। उनके चेहरे पर शिकन भी नहीं आई थी। परन्तु उस बार 55-56 मील लगातार पैदल चलना मुझे जँचा नहीं। शहर में अशफाक ने एक राजा साहब की कोठी ले रखी थी, जिसमें हम सब ठहराये गये थे। हम राजा साहब की शिकार पार्टी के आदमी बन गये थे। वहाँ पहुँचकर हम सब राइफल, बन्दूक, पिस्तौल एक कोने में पटककर--भूखे-प्यासे ही सबके सब ढेर हो गये थे।

उस घटना के करीब दो महीने बाद रामप्रसाद का पत्र पाकर मैं झाँसी से शाहजहाँपुर आया। आने पर रामप्रसाद ने शिकायत की कि रोशन सिंह पार्टी की एक "विंचेस्टर राइफल" और एक माउजर पिस्तौल दबा बैठे हैं, लौटाना नहीं चाहते। उन चीजों को आपको वसूल करना है। इसीलिए आपको बुलाया है। यह कार्य आप से ही हो सकेगा।

बात मेरी समझ में नहीं आयी। छानबीन करने पर रामप्रसाद ने कुछ ज्यादा साफ नहीं किया। अपनी अज्ञानता ही जाहिर की और कहा -"ठाकुर साहब हैं। नहीं देंगे। जिद है। और हो ही क्या सकता है?"

तब हमने योजना बनाई। रोशन सिंह को लिख भेजा गया--रामप्रसाद की तरफ से--"पार्टी के प्रान्तीय नेता आये हुए हैं, जिन्हें आप जानते हैं। वे राइफल और पिस्तौल ले जाना चाहते हैं। उन्हें जरूर देना है। उनको साथ लेकर परसों तक आपके यहाँ आ जाऊँगा।"

फिर हम दोनों खेड़ा नवादा के लिए रवाना हुए। खेड़ा नवादा में रोशन सिंह का घर था। रेलवे स्टेशन पर उतरकर करीब सात-आठ मील पैदल चलना पड़ा। रामप्रसाद भी रास्ता नहीं पहचानते थे। हम पूछते-पूछते वहाँ पहुँचे। खेड़ा नवादा ठाकुरों का गाँव है। उन दिनों नामी और मशहूर था। लेकिन उस गाँव का नाम लेना मुनासिब नहीं समझा गया। उन दिनों वहाँ पुलिस से गोली चल गयी थी। किसी ठाकुर को गिरफ्तार करने पुलिस की गारद लेकर दरोगा पहुँचे। ठाकुरों ने फैसला किया गिरफ्तारी नहीं होगी। लिहाजा उन्होंने बन्दूकें निकाल लीं। पूरे गाँव की नाकेबंदी करके जमकर लड़ने को तैयार हुए। गोलियाँ चलीं। परिस्थिति को खतरनाक समझकर दरोगाजी अपनी गारद लेकर भाग खड़े हुए।

फिर अंग्रेज सुपरिंटेण्डेण्ट पुलिस पूरी गारद लेकर पहुँचे। गाँव के बाहर पड़ाव डाला। गाँव को घेर भी लिया। बड़े-बूढ़ों के बीच-बचाव करने पर स्थिति सँभली और मुलजिम ने आत्म-समर्पण किया। दरोगाजी भी दूसरे जिले में बदल दिये गए।

ऐसे गाँव का रास्ता पूछकर हम अपनी तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित करना नहीं चाहते थे।

खेड़ा नवादा के पास एक गाँव 'बहेड़' है। ठाकुरों का बसाया हुआ गाँव। इस गाँव में सिर्फ वेश्याएँ ही बसाई गयी थीं। रामप्रसाद के सुझाव पर मैं 'बहेड़' का रास्ता पूछता गया। लोग भी समझे होंगे—दोनों मनचले नौजवान हैं।

हम रोशन सिंह के गाँव पहुँचे जब करीब दोपहर का समय था। रोशन सिंह ने बड़ी आवभगत की। कुछ शिष्टाचार के बाद मैंने पत्र की बात पूछी—पत्र मिला है कि नहीं? उन्होंने पत्र मिलना स्वीकार किया—जो कि एक नौजवान के हाथ भेजा गया था। मैंने उन्हें यह भी बता दिया कि रात को हम नहीं ठहरेंगे। रात वाली ट्रेन से ही लौटना है। उन्होंने स्टेशन तक पहुँचाने का वादा किया। निकट में कोई और स्टेशन है, वहाँ से ट्रेन पकड़ने के लिए शाम छः बजे निकलना काफी होगा।

वह हमारे साथ नहाने के लिए नदी को चल दिये। नदी किनारे पहुँचकर उन्होंने दूर जंगल की तरफ इशारा करके कहा—"यहाँ अशफाक ने जंगली सूअर का शिकार किया था। भागते हुए सूअर को एक गोली से मार गिराया था। यहीं पर अशफाक निशाना लगाने का अभ्यास करते हैं। अक्सर आते हैं अपने भाई की बन्दूक लेकर।"

मैंने कुछ आश्चर्य जाहिर किया—"मुसलमान और सूअर !" मैंने जानना चाहा कि फिर क्या हुआ।

रोशन सिंह ने बताया—"हमने चमारों को सहेज दिया। वे काट-कूटकर ले गये। थोड़ा अच्छा हिस्सा हमने ले लिया। हमारे यहाँ पका और ठाकुरों ने खाया।"

मैंने पूछा--"आप ने भी खाया? और अशफाक?"

रोशन सिंह बोले—"मैं खाता हूँ। मैंने जरूर खाया।"

"और अशफाक?"

रोशन सिंह हँसे—"कुँवर साहब ने शिकार तो किया और जंगली सुअर मार गिराया। लेकिन उन दिनों उनका व्रत था। स्वच्छ शाकाहारी थे। व्रत की बात सुनकर किसी ठाकुर ने उन्हें खाने के लिए जोर नहीं दिया। उस दिन मैंने अशफाक को बहुत परेशान किया था, तंग किया। चौके में हम बैठे खा रहे थे। मेरे बगल में अशफाक बैठे थे। आठ-दस ठाकुर और थे। मैंने बीच में टोक दिया, कुँवर साहब, आपके व्रत का कारण बता दूँ? अशफाक ने नाराज होकर कहा, खाना छोड़कर चला जाऊँ? मैंने खुशामद कर मनाया। फिर ठाकुरों ने जिद की। बता ही दिया जाए। आखिर मैंने बताया कि कुँअर साहब के राइफल की गोली से इत्तफाक से एक बछड़ा मर गया। कुँअर साहब हिरन मार रहे थे। हिरन ऐन मौके पर भाग खड़ा हुआ। रायफल की सीध पर आधी मील दूर पर एक बछड़ा मर गया। कुँअर साहब ने शान्ति करायी। बहुत दान-दक्षिणा दी। क्या-क्या नहीं किया! लेकिन उससे तसल्ली नहीं हुई। प्रायश्चित्त का व्रत लिया--दो साल विशुद्ध शाकाहारी रहेंगे। ठीक ही है, क्या करें! ठाकुर होकर रायफल तो छोड़ नहीं सकते हैं।"

रोशन सिंह उस दिन की याद करके हँसे।

नदी किनारे मेरे कपड़े उतारने से पहले ही रामप्रसाद पानी में उतर गये थे। बातचीत करते हुए, कपड़े उतारते समय रोशन सिंह ने मेरी बंडी के जेब में रखा हुआ पिस्तौल देख लिया। उन्होंने पूछा—क्या है?

मैंने उत्तर दिया—वही चीज है।

उन्होंने रामप्रसाद के कपड़ों की तरफ ताका, और मैंने बता दिया--उधर भी है।

उन्होंने आश्चर्य से पूछा—आखिर क्यों? मेरे यहाँ आने के वास्ते इसकी क्यों जरूरत पड़ी?

मैंने कहा—सिर्फ सावधानी बरतने के लिए।

हम दोनों गम्भीर थे। एक-दूसरे की आँखों में आँखें गड़ाये आमने-सामने खड़े थे। वातावरण में तनाव था।

इतने में मैंने कहा—चलिए तैरा जाए।

हम लोग नहाये। कुछ बातचीत भी करते रहे। कुछ तैरे भी। लेकिन तनाव कुछ बना ही रहा।

खाने के बाद आराम करते समय रामप्रसाद ने उनसे कितनी ही बातें पूछीं। कुछ सन्तोष भी जाहिर किया। शाम को चलते समय मैंने रोशन सिंह को सामान की याद दिलायी। उन्होंने कहा—"इस गाँव में नहीं है। मेरा एक भतीजा उसे लेकर स्टेशन रवाना हो गया है। वहीं पर वह मिलेगा। मैं भी आपके साथ स्टेशन तक पहुँचाने जा रहा हूँ। फिकर न करें।"

स्टेशन पर एक लड़का बिस्तर लेकर हमें मिला। रोशन सिंह ने वह बिस्तर मेरे हवाले किया। मेरे पूछने पर उन्होंने आश्वासन दिया कि सब ठीक है। कोई फिकर की जरूरत नहीं।

तब उन्होंने पूछा—अब बताइए, यह सब क्या माजरा है?

मैंने उल्टा पूछा—आप पार्टी की चीज (हथियार) क्यों दबा बैठे थे? यह तो गलत बात रही न?

उन्होंने अचरज में कहा—अच्छा, यह बात है! पण्डित ने यों कहा है! मेरे सामने कहे !

रामप्रसाद उस वक्त टिकट खरीदने गये हुए थे। मैं झगड़ा बढ़ाना नहीं चाहता था। मैंने उनसे कहा—इस समय आप जायें। फिर कभी आपसे बातचीत होगी। मैंने हाथ बढ़ाया। हाथ मिलाया और नमस्ते कहा। वह भी मान गये और नमस्ते कहकर चल पड़े।

लेकिन फिर रोशन सिंह से मेरी कभी बातचीत नहीं हुई। शाहजहाँपुर लौटकर मैंने अशफाकउल्ला से सब बातें बतायीं और कारण पूछा। अशफाक रामप्रसाद के अन्ध-भक्त थे। वे बोले—कोई माकूल वजह होगी जिससे इस ढंग से रामप्रसाद ने रोशन सिंह से बिगाड़ कर लिया।

शाहजहाँपुर का संगठन रामप्रसाद के जिम्मे था। इसलिए दखल देना मैंने मुनासिब नहीं समझा। लेकिन स्थिति से मैं खुश भी नहीं था।

इसके बाद कई डकैतियाँ डाली गयीं—सब रामप्रसाद के नेतृत्व में। सब में मैं शरीक हुआ। बमरौली के बाद मेरी 'ड्यूटी' हमेशा मकान के फाटक के बाहर रखी गयी—पहरे की ड्यूटी। रामप्रसाद ही यह ड्यूटी मुझे देते रहे। लेकिन किसी

में भी रोशन सिंह बुलाये नहीं गये। रोशन सिंह की अनुपस्थिति मुझको बराबर अखरती रही।

इन डकैतियों में रोशन सिंह के बदले में रामप्रसाद बराबर बुलाते रहे—पेशेवर बदमाशों को। पार्टी की ताकत मजबूत होने पर भी—और उन बदमाशों की कोई आवश्यकता न होने पर भी रामप्रसाद पेशेवरों को क्यों बुलाते रहे—यह कभी भी उन्होंने साफ नहीं किया।

अशफाक भी दो योजनाओं में नहीं आये।

इन सब डकैतियों में काफी विरोध का सामना हुआ, गोलियाँ चलीं। काफी आदमी मारे गये। लेकिन हाथ कुछ नहीं लगा। बिलकुल कुछ नहीं लगा। यह एक ऐतिहासिक सत्य है जिसे सब साथी जानते हैं। डरकर और झक मारकर पेशेवरों ने भी आना और साथ देना बन्द कर दिया। फिर गाँव की आखिरी डकैती में रामप्रसाद खुद पीटे गये और जख्मी हो गये। सबके सब पीटे जाते, पार्टी के सबसे सक्रिय सदस्य सब उस डकैती में पकड़ लिये जाते—यदि मैं बड़ी मुश्किल से परिस्थिति को सँभालने में सफल न हुआ होता। उस मकान के फाटक के बाहर मैं और रामप्रसाद थे। अशफाक शाहजहाँपुर में बीमार थे, अतः उसमें नहीं आये थे। मैंने रामप्रसाद से कई बार कहा था कि मेरे कन्धे पर चढ़कर खपरैल पर चढ़ जाओ। मैं नीचे रहूँगा। लेकिन वह राजी नहीं हुए। खपरैल पर से आसानी से मुकाबला किया जा सकता था। नतीजा—बहुत बड़ी दुर्घटना होते-होते बची।

उस डकैती में भी कत्ल हुआ। हुआ नहीं, करना पड़ा। लेकिन उसमें भी कुछ हाथ नहीं लगा। उल्टा उसमें एक मिलिटरी बुलडाग पैटर्न सर्विस रिवाल्वर खो दिया। आजाद उसे उसी घर पर छोड़कर चले आये थे जिसके लिए आजाद को सज़ा देनी पड़ी, उसी 'क्विकसिल्वर' चन्द्रशेखर आजाद को जिसका व्यक्तित्व बाद में इतना विकसित हो गया था कि वह क्रान्तिकारियों का 'सरताज' बन गया था।

आखिर प्रतिक्रिया हुई। गाँव की डकैती के खिलाफ आवाज उठायी गयी। नौजवानों ने साथ दिया। रामप्रसाद तब भी अकड़े रहे। पार्टी से विभक्त होकर दो टुकड़े हो जाने का मौका आया। तब कहीं नेता राजी हुए और यह सिद्धान्त माना गया कि आइन्दा गाँवों में डकैती डालकर व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं लूटी जाएगी।

तुलनात्मक दृष्टि से उन गाँव की डकैतियों में रोशन सिंह की बमरौली योजना पूर्ण सफल थी। कामयाबी थी उसमें। और उसमें धन भी काफी मिला था।

फिर काकोरी केस चला। शाहजहाँपुर संगठन की कमज़ोरी थी कि वहाँ वे

सबके सब पकड़ लिये गये। पुराने बमरौली में भाग लेने वाले रोशन सिंह भी पकड़े गये जबकि बनारस के कितने ही लोग—जिन्होंने बमरौली से लेकर लगातार करीब-करीब सब डकैतियों में भाग लिया था—जैसे 'तगड़े-जवान' (पार्टी का दिया हुआ नाम) महाबीर सिंह, काशी विश्वविद्यालय के होस्टल और इंजीनियरिंग कालेज का पूरा दल—कभी नहीं पकड़ा गया। वे अगर पकड़े जाते तो उन सबको शाहजहाँपुर के दोनों मुखबिर पहचान लेते। इन लोगों के पकड़े न जाने का कारण यह था कि बनारस के मजबूत संगठन में कोई मुखबिर पैदा नहीं हुआ।

आरम्भ में ही मैं बता चुका हूँ कि फाँसी की सज़ा आकस्मिक और अप्रत्याशित ढंग से सुनाये जाने पर भी रोशन सिंह ने उसे साधारण भाव से ग्रहण किया था। गीता के प्रवचन उनके जीवन में साकार थे—यह दिखला दिया उन्होंने। फाँसीघर में लम्बे अरसे तक अकेले बन्द रहने पर भी उनमें कोई भी परिवर्तन नहीं आया। कोई कमजोरी नहीं आयी, बल्कि उनके चरित्र में दिन-पर-दिन और निखार आता गया। जीवन और मृत्यु में कोई भेद वह नहीं मानते थे—यह उन्होंने चरितार्थ कर दिखाया। उन्होंने यह भी साबित कर दिया कि उनके जीवन के भोग उनके ऊपर कोई असर डाल नहीं सके। भोग को भी उन्होंने जीवन का एक अंग मानकर ही स्वीकार किया था।

और 19 दिसम्बर, 1927 के दिन अपना सिर ऊँचा करके ही वह "ओ३म् शान्ति" "ओ३म् शान्ति" कहते हुए फाँसी पर लटक गये।

पुरानी बातें याद आने पर उन दिनों की गाँव की डकैतियाँ मेरे मानस-पटल पर चलचित्र जैसी रह-रहकर आती रहती हैं। सैंतीस साल से अधिक गुजर जाने पर भी, मैं अपने मन से आज भी यह बात हटाने में असमर्थ हूँ कि रोशन सिंह के सक्रिय सहयोग लेने से, क्रान्तिकारी दल का उस जमाने का इतिहास कुछ और ही ढंग से बनता।

तब वह इतिहास और ज्यादा गौरवपूर्ण ढंग से लिखा जा सकता था।



शहीद ठाकुर रोशन सिंह जिन्हें 19 दिसम्बर, सन् 1927 को मलाका जेल, इलाहाबाद में फाँसी दी गई।



ठाकुर रोशन सिंह को फाँसी दिये जाने के बाद, दाह-संस्कार से पूर्व एक दुर्लभ चित्र

ज़िन्दगी जिन्दादिली को जान ए 'रोशन'
वरना कितने मरते और पैदा होते जाते हैं।

रोशन सिंह का दिनांक 9 सितम्बर 1927 का 'हृदय' नाम से भाई हुकम सिंह को जेल से लिखा गया पत्र

इस पत्र में रोशन सिंह ने अपनी मृत्यु पर शोक न करने को कहा है। साथ ही इस पत्र से उनकी वीरता, देशभक्ति, दृढ़ विश्वास व कवि हृदय के मनोभाव की झलक भी मिलती है–

वे लिखते हैं–

(प्रथम पृष्ठ) ...और समझाना कि रोशन तो दुनिया में रोशन ही होकर रहा और अन्त में भी किसी प्रकार शोचनीय नहीं, बल्कि दुनिया इज्जत के साथ देखती है और नवादा (रोशन सिंह का अपना गाँव) में पहला ही मनुष्य है जिसे सारी दुनिया ने जाना.....दूसरे यह भी ईश्वर की परम कृपा कि दो वर्ष वैराग्य के साथ तप का सौभाग्य प्राप्त हो गया और यह भगवान की ही कृपा समझो वरना 'जन्म-जन्म मुनि यतन कराहीं, अन्त राम कहि पावत नाहीं।' शायद मेरी हालत देख के अन्दाजा लगा सकोगे भाई, यह शरीर अनित्य है; सो इसका नाश होना निश्चय ही था। रहा जीव सो नित्य है....

(द्वितीय पृष्ठ) .....देखो, यह मनुष्य का शरीर संसार में जितनी चर-अचर योनि हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ है फिर इसको पाकर जिसने अपना परमार्थ न बनाया उसके समान कोई अभागा नहीं। भाई विश्वास रखो, तुम्हारे भाई की शुभ गति होगी...इसलिए मेरे विचार से तुम्हें मेरे लिए किसी प्रकार शोच न करना चाहिए क्योंकि तुम मेरे मित्र हो। सोचो कि तुम्हारे मित्र को अमृत मिल रहा है, विष से ईश्वर ने बचा लिया और चन्द्र की माता को समझा दो कि रोशन का चन्द्र अब संसार में प्रकाश करेगा...

तृतीय पृष्ठ–

जो देखा ख्वाब में उनको संभल बनकर वह आते हैं
बिखर कर बाल नागिन बन गले में लिपटे जाते हैं।

खुली जो आँख देखा छूटी बेहारी
न पाया यार अपने को मुफ्त में भटके जाते हैं।
भुलाकर उनकी उल्फत ने छुड़ाया दीन दुनिया को
वही अब सामने आने से भी आँखें छुपाते हैं।
तड़पते और मरते थे विला सूख मेरी देखे
वही अगियार के पहिलू में बैठे जी जलाते हैं।
मुहब्बत से लिपटते थे गले का हार बन कर के
मुनफ्फिर हो वह सूरत से नाक-भौं को बनाते हैं॥

अन्त में लिखते हैं–

खुदा खुद तू है ऐ गाफिल हटा कर देख परदा को
दुई के दूर होने से नज़र सब अपने आते हैं।
साफ कर दिल का आईना झुका ले फिर जो गरदन को
उसी दम अपने प्यारे का दरश अपने में पाते हैं।
जिन्दगी जिन्दा दिली को जान ऐ 'रोशन'
वरना कितने मरते और पैदा होते जाते हैं।

Arc. No. 223

ता० दिसम्बर 27

प्रियवर भाई हुकम सिंह जी सादर हृदय मिलाप व चिरंजीव
ईश्वर तुम्हें सुखी रखे। भाई तुम घबड़ाये हुये थे [illegible] लिये तुम्हारी
ऐसी दशा देख मैं तुमसे बातचीत न कर सका भाई ईश्वर ने समय
दिया तो सब समझाऊंगा भाई मैंने कभी तुम्हें या अपने घरों को
दोष भी नहीं समझा इसको ईश्वर ही जानता है तुम मुझसे
पूछते थे कि हमसे क्या कहते हो — सो भाई मैं क्या कहूँ जो तुम
अपना कर्तव्य समझो सो पालन करना। विद्या को विवाह करना
किसी अच्छे पढ़े लिखे स्वयोग्य खानदान में और विपत्ति को
न होने तक हो सके पढ़ाना अपनी भौजी को यह सब लिखना
और उनको मेरे तरफ से यही [illegible]
[illegible] तुम्हारे सिपुर्द करके [illegible]
और सब भाई कि रोशन सिंह दुनिया से रुखसत हो [illegible] और
अंत में भी किसी प्रकार शोक नहीं नहीं बल्कि दुनिया लोग इज्जत
से देखती है — और भाई मैं पहिला ही मनुष्य हूँ जिसे सारी
दुनिया ने जाना यह जानती है कि मैंने कुछ करा धरा नहीं उस सिवा
ईश्वर के कौन जानता है इसी पर भी ईश्वर की पूरी कृपा
थी [illegible] वैराग्य के साथ तप का सौभाग्य प्राप्त हो गया और यह
भगवान की ही कृपा समझो [illegible] जनता रूपी [illegible]
[illegible] शायद मेरी हालत देख के [illegible]
भाई यह शरीर अनित्य है सो यह नाश होना निश्चय हो था रहा जीव
सो नित्य है उसको किसी का कुछ खतरा नहीं सोचो हम तुम इस शरीर
लेने के बाद से भी [illegible] किसी के रखवाली थे लेकिन [illegible]

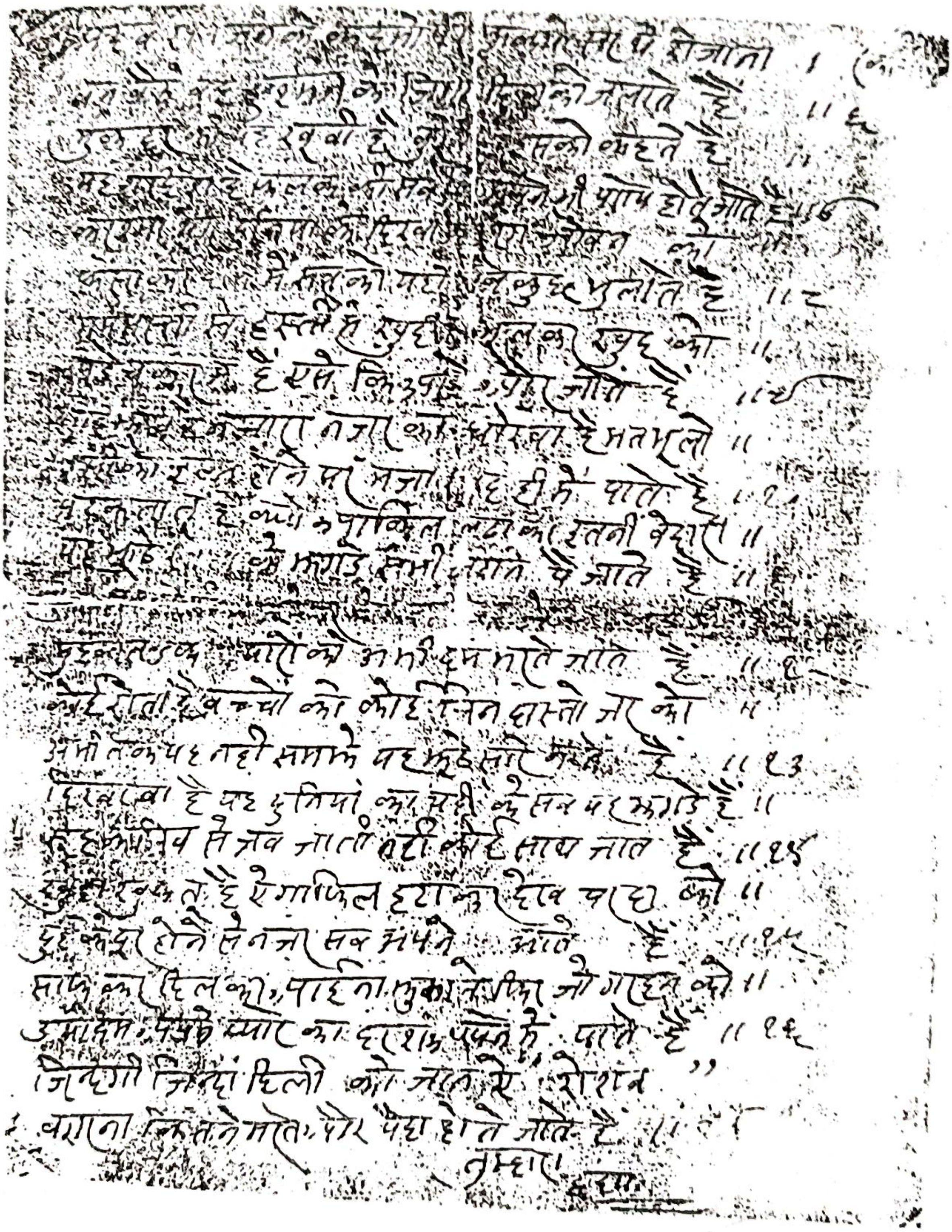
यह बात निश्चय है कि [illegible] परिवर्तन है इसलिये
इस मामूली हादसे के लिये रंज करना [illegible] है — देखो यह मनुष्य
का शरीर [illegible] जितनी बार [illegible] योनि है [illegible] है फिर इसको
पाकर जिसने अपना परलोक न बनाया उसके समान कोई अभागा
नहीं भाई विश्वास रखो कि तुम्हारे भाई की [illegible] होगी और सम्भव है
नहीं [illegible] है कि यह दुनियां है और उसकी तृष्णा में लिपट रह जाता
है ऐसा [illegible] कि भगवान ने गीता में कहा है कि मैं अपने भक्तों
को ऐसा योग में [illegible] करता हूं — इसलिये मेरे विचार से तुम्हें
मेरे लिये किसी प्रकार रंज न करना चाहिये क्योंकि तुम मेरे भाई हो
सोचो कि तुम्हारे मित्र को आदर्श मिला है जिस ने ईश्वर के नाम लिया
और [illegible] की माता को समझा दो कि [illegible] एक [illegible] के प्रकाश
होगा इसलिये किसी बात का सोच नहीं करना चाहिये उनसे कहो कि वही
[illegible] जिससे [illegible] निकलते किसी प्रकार [illegible]
[illegible]
[illegible] उनको सहाय करे — सत्य [illegible]
उनका [illegible] उनके पास रहता वह [illegible]
[illegible] स्वर्ग चला जाय, [illegible] उनको [illegible]
यह अवश्य है कि मैं उन्हें बहुत सुखी न कर सका उनके लिये बहुत
दुःखी हूं — और मैं सब [illegible] देता हूं कि वह सब सुख पावेगी
छोटों के साथ ऐसा बर्ताव करना कि जिससे वह संतुष्ट रहें
और मैं [illegible] हूं कि उन्हें ईश्वर सद्बुद्धि दे तुम्हारे [illegible] को
पूज्य माता जी को [illegible] प्रणाम कहना [illegible]
[illegible] को [illegible] बच्चों को प्यार — पूज्य [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] को [illegible] नमस्ते कहना

आर जीराज सिंह व तेजपाल सिंह व नारायण सिंह व हतेराम गुलाम सिताम्बर
लाल सिंह को दुआ पहुँचना चाहिए व ... को चलन धूना ग्राम के सब भाइयों
को जुहार २ नमस्ते और गांव के मिलने वालों को नमस्ते
और जो २ मुझसे पूछें उन सबको नमस्ते कहिना भाई रघुनाथ सिंह व
जै सिंह को राम २ लिख भेजना —

श्री चन्द्रदेव जी साहब व श्री छोटी को मेरा नमस्ते आदर
और आशीर्वाद कहिना क्योंकि मैं इस तन इस शरीर का धर्मी हूँ
जब तक यह है इसके कर्तव्य को पालन करूँगा और संभव है कि
ईश्वर आप लोगों को मिलने उनसे आपके लोको
एक गज़ल जो मैंने कुछ दिन हुए देखने के बाद जाना का बनाई
उसको नीचे लिखे देता हूँ

[illegible] गज़ल कव्वाली

ओ ईश्वर ख़्वाब कि उनको संभल करके वह पाते हैं ।
विदा करने वाले गाज़ियान वतन के लिपटे जाते हैं
खुली जो आँख देखा छुट्टी (ख़्वाब) में थी ॥ १
न पाया यार अपने को मुल्क में मरके जाते हैं ॥ २
भुलाकर जिनकी उल्फ़त ने छुड़ाया दीन दुनियाँ को
वही अब सामने आते से भी पाँव छुपाते हैं ॥ ३
तड़पते और मरते थे बिना सूरत भी देखे ।
वही आशिक यार के पहलू में बैठे भी जलाते हैं ॥ ४
मुहब्बत से लिपटते थे गले का हार बनकर के ।
मुनीकिर हो वह सूरत से नाक भौं सिकोड़ते हैं ॥ ५



[illegible] पे होजाते ।
[illegible] को जलाते हैं ॥
[illegible] कहते हैं ॥
[illegible] प्राण हो जाते हैं ॥
[illegible]
[illegible] कुछ भुलाते हैं ॥ ८
[illegible] हस्ती है [illegible] ॥
[illegible] हैं ऐसे [illegible] जाते हैं ॥
[illegible] नजारा [illegible] है मत भूलो ॥
[illegible] होने का मजा [illegible] पाते हैं ॥
[illegible] हैं क्यों [illegible] मुश्किल [illegible] इतनी बेदारी ॥
[illegible] सभी [illegible] ये जाते हैं ॥
[illegible]
[illegible] आते जाते हैं ॥
कोई रोता है [illegible] को कोई [illegible] को ॥
अभी तक यह नहीं समझे यह क्यूं [illegible] मरते हैं ॥ १३
दिखावा है यह दुनियां का [illegible] ॥
[illegible] जाते हैं ॥
[illegible] है ऐ गाफिल [illegible] को ॥
[illegible] होने [illegible] आते हैं ॥
[illegible] दिल को [illegible] ॥
[illegible] प्यार का [illegible] पाते हैं ॥
जिन्दगी जिन्दा दिलों को [illegible] रोशन ॥
[illegible] कितने [illegible] पैदा होते जाते हैं ॥
तुम्हारा [illegible]

अमर शहीद अशफाकउल्ला खाँ

शाहजहाँपुर स्टेशन के बाहर ही शहर के किनारे स्थित पठान बस्ती में एक कुलीन पठान घराने में अशफाकउल्ला खाँ का जन्म हुआ था। उनके सबसे बड़े भाई श्री शाहंशाह खाँ भोपाल में डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट थे। एक खास रिश्तेदार सर इसरार हसन खाँ भी भोपाल राज्य में बहुत ऊँचे पद पर थे। अशफाकउल्ला का घराना काफी सम्पन्न था। बड़े भाई के पास बन्दूक का लाइसेन्स भी था, जिसका उपयोग प्रायः क्रान्तिकारियों ने ही किया।

बहुत से लोग समझते हैं कि अशफाकउल्ला को पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल क्रान्तिकारी दल में लाए, पर ऐसा नहीं है। अशफाकउल्ला खुद कोशिश करके क्रान्तिकारी दल में आए।

पं॰ रामप्रसाद मैनपुरी षड्यन्त्र के बाद शाहजहाँपुर में बस गए थे। उस वक्त पुलिस मैनपुरी षड्यन्त्र के सिलसिले में उनका पीछा कर रही थी। अशफाकउल्ला सन् 1921 में ही असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण पढ़ना-लिखना छोड़ चुके थे। पं॰ रामप्रसाद उस समय क्रान्तिकारी के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे, इसलिए मौका पाकर अश्फाकउल्ला ने उनसे मेल-जोल बढ़ाया और क्रान्ति के क्रियाकलापों में दिलचस्पी लेने लगे। वैसे पं॰ रामप्रसाद कट्टर आर्यसमाजी थे, पर जब वे 1923 में 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' में शरीक हुए और खुलकर काम करने लगे तब उन्होंने अशफाकउल्ला को अच्छी तरह आजमाया कि यह नौजवान पठान क्रान्तिकारी दल में आना चाहता है, कैसा रहेगा?

इसी बीच शाहजहाँपुर में हिन्दू-मुसलमान के दंगे उठ खड़े हुए। अशफाकउल्ला ने झगड़ा दूर करने की पूरी कोशिश की और हिन्दुओं तथा मुसलमानों का सम्मिलित जुलूस निकाला। पं॰ रामप्रसाद को अशफाकउल्ला के सुलझे हुए विचार पसन्द आए। धीरे-धीरे वे लोग एक-दूसरे के निकट आते गये और उनमें परस्पर मैत्री हो गई।

अशफाकउल्ला खाँ के साथ मेरा प्रथम परिचय सन् 1924 के पूर्वार्द्ध में

हुआ जब मैं श्री योगेश चटर्जी (अब संसद सदस्य) के साथ शाहजहाँपुर गया था। उसके बाद हम लोग अक्सर मिलते रहे तथा क्रान्तिकारी कामों में भाग लेते रहे। वह लम्बे-चौड़े, पक्के खिलाड़ी, गोरे और खुबसूरत व्यक्ति थे। उनका वज़न पौने दो सौ पौण्ड था। बाद में चलकर जेल में तो उनका वज़न 203 पौण्ड हो गया था। अत्यन्त आकर्षक और भारी-भरकम व्यक्तित्व होने के कारण वे भीड़ में भी सबसे अलग पहचाने जा सकते थे। जब कभी हम लोग खुलेआम बन्दूक, राइफल लेकर चला करते थे तो अशफाक सहज ही हम लोगों के बीच राजा साहब या कुँवर साहब बन जाते थे और हम सब लोग उनके दरबारी या शिकार पार्टी के सदस्य बन जाते थे। कई बार हम लोगों ने इसी तरह स्वाँग रचकर पुलिस को चकमा दिया था। उनमें ताकत भी गजब की थी। थकावट का तो नाम ही नहीं जानते थे। एक बार 55-56 मील लगातार पैदल चलने के बाद हम सभी थककर चूर हो गए। स्वयं पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल भी शिथिल हो गए थे, लेकिन अशफाक के चेहरे पर शिकन भी न आई थी।

अशफाकउल्ला शायर, लेखक, वक्ता, चिन्तनशील तथा दूरदर्शी व्यक्ति थे। हर बात में उनकी अपनी अलग विशेषता थी। उस समय कुछ ऐसा मायूसी का वातावरण था कि कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता पूर्णस्वराज्य का लक्ष्य तो दूर रहा, डोमीनियन स्टेट्स के इर्द-गिर्द मंडरा रहे थे। ऐसे समय में हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के सक्रिय कार्यकर्ता भारतीय लोकतन्त्र का उद्देश्य लेकर चल रहे थे। वे सरकार का सीधा मुकाबला करना चाहते थे। सभी कुछ न कुछ करने के लिए मर मिटने को तैयार थे।

दल को अक्सर रुपये की ज़रूरत रहती थी। अब तक इस अभाव को पूरा करने के लिए गाँवों के अत्याचारी ज़मींदारों और महाजनों के यहाँ डाके डाले जाते थे, पर इस तरीके में कई बुराइयाँ भी थीं। इस तरह डाका डालने में पुलिस से बचे रहने की काफी गुंजाइश रहती थी, पर साथ ही अक्सर साधारण डाकू समझकर गाँववाले भिड़न्त कर बैठते थे जिसमें कितने ही निर्दोष ग्रामीणों की हत्या का प्रश्न उठ खड़ा होता था। इसीलिए व्यक्तिगत रूप से किसी पर आक्रमण करके रुपये वसूल करने के इस ढंग को छोड़ देने का निश्चय किया गया और इस पर अमल भी किया जाने लगा। पर दल की जरूरतों को पूरा करने की भी समस्या थी ही।

उस समय जर्मनी से माउज़र पिस्तौल आने वाले थे जिन्हें नकद रुपये देकर कलकत्ता बन्दरगाह से प्राप्त करना था। सारी योजना गुप्त थी। ऐसा मौका हाथ

से जाने नहीं दिया जा सकता था। पर रुपयों की बहुत कमी थी। गाँवों में डकैती करने का विचार त्याग दिया जा चुका था क्योंकि वहाँ से बहुत काफी रुपया भी नहीं मिल पाता था। इस बार एक बड़ी योजना बनाई गई। यह तय किया गया कि लखनऊ के पास 8 डाउन ट्रेन को रोककर उससे आने वाला रेल का खजाना लूट लिया जाए। इसके लिए काकोरी स्टेशन के पास एक वीरान जगह भी चुन ली गई। सारी तैयारी गुपचुप लेकिन बड़ी सरगर्मी के साथ होती रही। पर अशफाउल्ला खाँ इसका विरोध करते रहे। यह मानना पड़ेगा कि वे बहुत दूर की सोच रहे थे। उनका कहना था कि अभी हमारा दल इतना मजबूत नहीं है कि हम ब्रिटिश साम्राज्य को खुली चुनौती दे सकें। अभी हम इस हालत में नहीं हैं कि सरकार से सीधी लड़ाई छेड़कर दल को कायम रख सकें। लेकिन सब जोश के मारे फड़क रहे थे और अशफाकउल्ला की बात नक्कारखाने में तूती की आवाज बनकर रह गई।

9 अगस्त, 1925 को ट्रेन डकैती का निश्चय किया गया था। हम लोग दस आदमी जब काकोरी स्टेशन पहुँचे उस समय भी अशफाकउल्ला कहते रहे कि रामप्रसाद बात मान जाओ, अब भी लौट चलो। पर उनका कहना अरण्य-रोदन ही रहा। पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल ने मुझे बुलाकर कहा कि अशफाक को समझाओ और उसे बताओ कि लोग उसके विरोध के कारण उसे क्या-क्या कह रहे हैं।

मैंने अशफाक को बताया कि ऐन मौके पर पहुँचकर तुम जो विरोध कर रहे हो उसकी प्रतिक्रिया साथियों पर बड़ा खराब असर डालेगी, बल्कि वे तो तुम्हें डरपोक भी कहने लगे हैं। दरअसल, हमारे कई साथी कह रहे थे कि अशफाक डर गया है। पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल ने भी अशफाकउल्ला को बताया कि सभी यही सोच रहे हैं कि तुम डर गए हो।

पर अशफाक की एक ही रट थी—लौट चलो, यह काम नहीं होना चाहिए।

खैर, नतीजा यह हुआ कि रेल डकैती का काम शुरू करने का भार पण्डित रामप्रसाद ने मेरे ऊपर डाला। मैंने अशफाकउल्ला और राजेन्द्र लाहिड़ी को भी साथ में लिया तथा तीन सेकेण्ड क्लास के टिकट खरीदकर काकोरी स्टेशन से ट्रेन में सवार हो गया। अन्य लोग भी अलग-अलग डिब्बों में बैठ गए। सारा काम बड़ी सफलता के साथ हुआ। ट्रेन रोकी गई। यात्रियों को हवाई फायर करके चुप रहने को मजबूर कर दिया गया और साथ ही उन्हें बता दिया कि हम क्रान्तिकारी हैं, हमें किसी यात्री को परेशान नहीं करना है। सरकारी खजाना लूटकर हम चले जाएँगे।

गार्ड के डिब्बे से खजाने का सन्दूक उतारकर तोड़ा जाने लगा। एकाएक दूसरी ओर से इंजन की तेज सर्चलाइट दिखाई पड़ी। हमारी धड़कनें बढ़ गईं और यह शक हुआ कि किसी तरह हमारी गुप्त योजना खुल गई है और पुलिस आ रही है। फिर भी हम पूरी तरह से मरने-मारने को तैयार थे। जान हथेली पर रखकर हम युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए, पर किसी ने अपनी जगह न छोड़ी, जो जिस ड्यूटी पर था, वहीं रहा।

पर बात ही दूसरी निकली। वह कोई साधारण एक्सप्रेस ट्रेन थी और साथ वाली दूसरी लाइन पर से निकल गई। सन्दूक तोड़कर खजाना निकाल लिया गया और हम सब लखनऊ के लिए पैदल ही रवाना हो गए। अशफाकउल्ला खाँ यद्यपि शुरू से ही इस डकैती का विरोध कर रहे थे, फिर भी मौके पर उन्होंने बिना किसी हिचकिचाहट के अपनी ड्यूटी पूरी तौर से अदा की।

दूसरे दिन सबेरे मैं लखनऊ स्टेशन पर काकोरी डकैती के विषय में पता लगाने को जा ही रहा था कि अचानक एक अजीब-सी सूचना मिली। अखबार में समाचार निकला था कि डकैती के सिलसिले में एक हत्या भी हो गई है। हम न तो ऐसा चाहते ही थे और न बाद को ही जान पाए थे कि किसकी और किस तरह हत्या हो गई। सारी परिस्थिति बदल चुकी थी। मैं एक अखबार लेकर डेरे पर लौटा और तुरन्त सबको खबर दी। फौरन सब क्रान्तिकारी साथियों को सावधानी के साथ तितर-बितर कर दिया।

सन् 1925 के 26 सितम्बर को 4 बजे भोर में प्रान्तभर में छापा मारा गया तथा गिरफ्तारियाँ की गईं जिसमें चन्द्रशेखर आजाद, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, अशफाकउल्ला खाँ तथा मैं और अन्य कई लोग गिरफ्तार नहीं किए जा सके। धीरे-धीरे और लोग पकड़े गए, पर चन्द्रशेखर आजाद अन्त तक गिरफ्तार नहीं किए जा सके।

फरार होते ही अशफाउल्ला अपने घर से आधे मील के अन्दर ही गन्ने के खेत में छिपे रहे। रात को उनका खाना वहीं पहुँचा दिया जाता था। इस प्रकार उन्होंने दो-तीन दिन तो बिताये, पर तलाशी के समय उनके भाई की बन्दूक भी जब्त कर ली गई। उन्होंने देखा कि शाहजहाँपुर के सभी लोग पकड़ लिये गए। वे शाहजहाँपुर छोड़कर अन्य साथियों की तलाश में कई शहरों में गए। घूमते-घूमते वे बनारस पहुँचे। वहाँ भी वे जहाँ-जहाँ गये, कोई नहीं मिला। सब पहले से ही गायब हो चुके थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भी कई साथी कार्यकर्ता थे, जिनसे अशफाउल्ला का परिचय था। उन्हीं के माध्यम व पहचान से वे बिहार चले गए। वहाँ एक साथी के जरिए से जिला पलामू के डाल्टनगंज में एक्ज़िक्यूटिव

इंजीनियर के आफिस में नौकरी करने लगे। उस जगह उन्होंने अपना परिचय मथुरा के एक कायस्थ के रूप में दिया और पूरी तरह हिन्दू बनकर लगभग आठ-दस महीने तक नौकरी की।

संयोग से इंजीनियर भी शायरी का शौकीन था और खुद भी थोड़ी-बहुत शायरी करता था। एक मुशायरे में अशफाकउल्ला की शायरी सुनकर वह बहुत प्रभावित हुआ और अशफाकउल्ला की बड़ी इज़्ज़त करने लगा। उसने खुश होकर अशफाकउल्ला की तनख्वाह बीस रुपये बढ़ा दी।

डाल्टनगंज में रहते समय ही अशफाकउल्ला ने बंगला सीख ली और बंगला कुछ-कुछ बोलने तथा समझने भी लगे। उन्हें बंगला गाने भी गाने का अभ्यास हो गया। बंगला साहित्य के सम्पर्क में आ जाने के कारण उन्हें हिन्दू संस्कृति का बहुत परिचय मिला। कहना यह चाहिए कि इसके द्वारा वे पठान होते हुए भी हिन्दू संस्कृति की तह तक पहुँच गए। डाल्टनगंज में उनके आठ महीने अध्ययन, शिकार और शायरी में बीते। उन दिनों मैं पलामू से सौ मील के अन्दर भागलपुर और हजारीबाग में रहा, पर मेरा अशफाक से कोई सम्पर्क स्थापित नहीं हो सका, क्योंकि हम दोनों ही एक-दूसरे की स्थिति से एकदम अनभिज्ञ थे। न मुझे मालूम था कि अशफाक मेरे इतने नज़दीक हैं और न अशफाक ही जानते थे कि मैं यहीं भागलपुर में हूँ। ये बातें तो हमें बाद में चलकर मालूम हुईं जब हम दोनों गिरफ्तार होकर लखनऊ सेण्ट्रल जेल में मिले।

अशफाक शीघ्र ही डाल्टनगंज से ऊब गए और उन्होंने विदेश चले जाने का निश्चय किया। डाल्टनगंज से वे दिल्ली पहुँचे। वहाँ इंजीनियरिंग पढ़ने के बहाने से विदेश जाने के लिए वे पासपोर्ट प्राप्त करने की कोशिश करने लगे। उसी समय इत्तफाक से उनके एक सहपाठी मित्र दिल्ली में मिल गए। वे भी शाहजहाँपुर के पठान थे और तब शायद दिल्ली में कहीं नौकरी करते थे। वे अशफाक को बड़े तपाक से अपने डेरे पर ले गए। उस दिन उन्होंने वहीं खाना खाया और वहाँ से लगभग ग्यारह बजे रात अपने डेरे पर लौटे। दूसरे दिन सुबह 4 बजे ही उनको गिरफ्तार कर लिया गया। वे एक साल तक फरार रहे और 8 सितम्बर, 1926 में पकड़े गए। अशफाक का पूरा ख्याल था कि उनको पकड़वाने के लिए ब्रिटिश सरकार की ओर से जो दो हजार का इनाम रखा गया था, उसी के लालच में पड़कर उनके सहपाठी और सज़ातीय मित्र ने गद्दारी की है। उनको इस बात पर पूरा विश्वास हो गया कि मित्र ने दगा करके उनकी गिरफ्तारी करा दी।

उनकी गिरफ्तारी के तीन-चार माह बाद यानी कुल सोलह महीने फरार रहकर

मैं भी भागलपुर में गिरफ्तार हो गया। मैं भी वहाँ से लखनऊ सेण्ट्रल जेल लाया गया। वहाँ मालूम हुआ कि अशफाक जेल के योरोपियन वार्ड में रखे गये हैं। मुझे अलग बैरक की एक कोठरी में रखा गया। वहाँ से अशफाक के साथ सम्पर्क स्थापित करने में मुझे कई दिन लग गए।

उस वक्त अशफाकउल्ला सेशन सुपुर्द हो चुके थे। पर मेरे आने पर उनका मुकदमा स्थगित कर दिया गया और जल्दी-जल्दी मेरे सेशन सुपुर्द किए जाने की तैयारी होने लगी, जिससे सेशन जज के सामने हम दोनों के मुकदमों की साथ-साथ सुनवाई हो सके। उस समय काकोरी केस के अन्य कैदी लखनऊ जिला जेल में इकट्ठे थे और उनका मुकदमा अलग चल रहा था। हम लोगों को उस मुख्य मुकदमे में शामिल नहीं किया गया था क्योंकि हम बहुत देर में गिरफ्तार हुए थे और हमें शामिल करने पर दोबारा सारे मुकदमे को नये सिरे से चालू करना पड़ता।

मेरे मुकदमे की सुनवाई रोज़ 10 बजे से 6 बजे तक होने लगी और जल्दी-जल्दी वहाँ से मेरा मुकदमा उठाकर कोई डेढ़ महीने बाद मुझे भी सेशन सुपुर्द कर दिया गया।

सेशन सुपुर्द होने के बाद, पहले दिन हम दोनों साथ-साथ सेशन जज की अदालत में ले जाये गए। उस समय एक अजीब-सा दृश्य उपस्थित हो गया। उस दृश्य की याद आते ही सभी बातें मेरे मानस-पटल पर चलचित्र की भांति घूमने लगती हैं।

जेल से अदालत ले जाने के पहले हमारे पैरों में बेड़ी डाल दी जाती थीं। जब मैं जेल ऑफिस में पहुँचा और मुझे बेड़ी डाली जाने लगीं उस समय मैंने देखा कि अशफाक बेड़ी पहने हुए ऑफिस जेलर के पास खड़े बातें कर रहे हैं। उस समय जेल का सारा स्टाफ, सब जेलर, ऑफिस जेलर, डिप्टी जेलर, बाबू लोग ऑफिस में इकट्ठे हो गए थे। वे हमारे प्रथम मिलन का तमाशा देखने के लिए जुटे थे। ऑफिस जेलर का कहना था कि हम लोग भरत मिलाप देखने के लिए आए हैं।

जब मुझे बेड़ी डाली जा चुकी तो ऑफिस जेलर ने मुझे बुलाया—'बख्शी जी, ज़रा इधर सुनिए।'

मैं पास पहुँचा तो अशफाकउल्ला ने बड़े तपाक से कहा—"अच्छा, आप ही बख्शी जी हैं?"

मैंने ऑफिस जेलर से पूछा—"आप कौन हैं?"

ऑफिस जेलर ने परिचय दिया—'यही तो अशफाकउल्ला खाँ हैं।'

हम दोनों ने बड़े जोश के साथ हाथ मिलाया और एक-दूसरे के गले मिले। उसी समय चारों ओर से तालियाँ बजीं। सब कहने लगे—हम यही भरत मिलाप देखने के लिए ही तो इकट्ठे हुए थे।

असल बात यह थी कि हम लोगों के बीच पहले से ही तय हो चुका था कि हम एक-दूसरे को पहले से ही जानते हैं, ऐसी कोई बात किसी के सामने जाहिर नहीं होने दी जाए, क्योंकि इससे हमारे मुकदमे पर हमारे विरुद्ध असर पड़ सकता था और दूसरे पक्ष को यह साबित करने का मौका मिल जाता कि हम एक साथ काम करते थे।

तब से मैं भी योरोपियन वार्ड में रख दिया गया और बाद में फैसला होने तक की तारीख तक हम साथ ही रहे।

हमें मालूम हुआ कि पं0 रामप्रसाद हवालात में बहुत धार्मिक कट्टरता दिखलाते थे तथा प्रचार भी करते थे। मैंने जब इसका विरोध किया, तब अशफाक ने यह बतलाया कि शायद पं0 रामप्रसाद ने यह आडम्बर रचकर बचाव की कोई नीति अपनायी हो और वे भी खूब नियम के साथ निमाज़ वगैरह पढ़ने लगे। रोज़ा भी रखना शुरू कर दिया। नियमित रूप से निमाज़ वगैरह पढ़ने पर भी वे कट्टर कतई नहीं थे। धर्म को वे कभी रास्ते का रोड़ा बनते नहीं देख सकते थे, बल्कि ऐसा होने पर वे धर्म को रोड़े की तरह ठुकरा देना ठीक समझते थे। वे मुल्क की आज़ादी के सवाल को मज़हबी मतभेदों से कहीं ऊँची चीज़ मानते थे। पहले वे देश को स्वतन्त्र देखना चाहते थे। इसी से अशफाकउल्ला की धर्म के सम्बन्ध में उदारता का तथा उनके हृदय में हिलोरें लेती हुई देशभक्ति का परिचय मिल जाता है।

मैं कट्टर नास्तिक तथा भगवान और अल्लाह दोनों को गाली देने वाला आदमी था, लेकिन इस सिलसिले में बहुत दिनों तक साथ रहने पर भी हम लोगों में कभी इस सम्बन्ध में या धर्म के किसी भी विषय पर बहस नहीं हुई जैसा कि शचीन्द्रनाथ सान्याल और गोबिन्दचरण धर्म और ईश्वर के पक्ष में दूसरे कमउम्र अभियुक्तों से बहस किया करते थे। इस विषय में अशफाकउल्ला का कहना था कि मैं 'उसी' को बड़ा मानता हूँ और यह समझता हूँ कि हमारे और दुनिया के ऊपर कोई 'और' है। तुम इसे नहीं मानते, जिस दिन मेरा भी इस बात से विश्वास उठ जाएगा उस दिन मैं भी ईश्वर को मानना छोड़ दूँगा। यह तो एकदम व्यक्तिगत विश्वास की बात है।

उन दिनों लखनऊ से 'हमदम' नाम का एक उर्दू दैनिक निकलता था, जिसमें 'वारसी' तखल्लुस (उपनाम) से अशफाकउल्ला की बहुत-सी गज़लें छपती थीं। अशफाक हवालात में बैठकर अक्सर गज़लें लिखा करते थे। हमारे वकील लोग उन्हें ले जाकर छपवाया करते थे। उनकी एक गज़ल मुझे अभी तक याद है, जिसे उन्होंने मेरे सामने लिखा था–

सुनाएँ गम की किसे कहानी, हमें तो अपने सता रहे हैं,
हमेशा सुबहोशाम दिल पर, सितम के खंजर चला रहे हैं।
न कोई इंगलिश, न कोई जर्मन, न कोई रशियन, न कोई तुर्की,
मिटाने वाले हैं अपने हिन्दी, जो आज हमको मिटा रहे हैं।

अशफाकउल्ला बहुत खुशदिल और हँसमुख व्यक्ति थे। उनको कभी गुस्सा होते तो मैंने देखा ही नहीं। जेल में भी उनकी खुशमिजाज़ी हमेशा-हमेशा कायम रही। एक दिन मुख्य मुकदमे के सरकारी वकील पं. जगतनारायण मुल्ला हमारे कोर्ट में चन्द मिनट के लिए आए थे। उस वक्त मुख्य मुकदमे का फैसला नहीं सुनाया गया था। अशफाकउल्ला ने पं. जगतनारायण मुल्ला के बारे में उसी वक्त कुछ शेर कहे थे–

चलो चलो यारो रिंग थियेटर दिखाएँ तुमको...
जो चन्द टुकड़ों पर सीमोजर के नया तमाशा दिखा रहे हैं।

इसमें पं. जगतनारायण मुल्ला की ओर इशारा था जो गवर्नमेण्ट से 500 रुपये रोज लेकर देशभक्त क्रान्तिकारियों के खिलाफ सरकार की ओर से पैरवी कर रहे थे। रिंग थियेटर में हमारे मुकदमे की अदालत बैठती थी।

मुकदमे की सुनवाई समाप्त हो चुकी थी। फैसले के दिन से पहले वाली रात को खाने-पीने के बाद अशफाक ने सलाह की कि कल कचहरी में गाने के लिए कोई नई चीज़ बनाई जाए। फिर उन्होंने एक गीत बनाया, जिसकी चन्द लाइनें मुझे अब तक याद हैं–

हे मातृभूमि तेरी सेवा किया करूँगा,
फाँसी मिले मुझे या हो जन्म कैद मेरी,
बेड़ी बजा-बजाकर तेरा भजन किया करूँगा।

सेशन कोर्ट में एक एक्ज़ीविट था अशफाकउल्ला की एक चिट्ठी, जिसमें

उन्होंने हिन्दुस्तान की बहुत सी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं पर खूब तर्क-वितर्क के द्वारा चिन्तन किया था।

अशफाकउल्ला वैसे उम्र में मुझसे साल-डेढ़ साल बड़े ही थे, लेकिन पार्टी के संगठन का ज्यादा पुराना और तजुर्बेकार कार्यकर्ता होने के नाते वे मुझे बड़ा मानते थे। रोज़-बरोज़ होने वाले क्रान्तिकारी मामलों में वे मुझे ज़्यादा प्रवीण भी समझते थे, इसलिए हमेशा मुझसे सलाह लेते थे और उसे मानते भी थे। लेकिन जिस वक्त मुझे और अशफाक को सज़ा सुनाई गई थी, मुझे उम्रकैद यानी कालेपानी की सज़ा दी गई और अशफाक को फाँसी की सज़ा सुनाई गई। मुझे ऐसा लगा मानो अशफाक एकाएक मुझसे बहुत ऊँचे हो गए हैं। वैसे मैं बता चुका हूँ कि वे राजकुमारों के समान ऊँचे, पूरे और गठे हुए बदन के आकर्षक व्यक्ति थे, पर उस समय तो उनका व्यक्तित्व सहसा मुझे इतना बड़ा लगने लगा कि मेरी समझ में कुछ न आया। मेरी आँखों से आँसू निकल आए। मैं बड़ी कठिनाई से बंगला में कह सका—"एक यात्रा में पृथक फल नहीं होना चाहिए, मुझे भी यही सज़ा मिलनी चाहिए थी।"

मेरा गला रुँध गया था। मुझसे और कुछ नहीं बोला गया। उस समय अशफाकउल्ला ही उलटे मुझे समझाने लगे थे। उनमें धैर्य धारण करने की शक्ति अद्भुत थी।

हम लोग फैसला सुनाए जाने के बाद अदालत से जेल लाये गए। शाम को लखनऊ स्टेशन तक हमारा साथ रहा। फिर वे फैजाबाद जेल में फाँसीघर के लिए भेज दिए गये और मैं आगरा सेण्ट्रल जेल भेजा गया।

उस दिन से मैं और वे हमेशा-हमेशा के लिए अलग हो गए। फिर कभी अपने प्यारे अशफाक को देखने का मौका न मिला, लेकिन आज भी उनका आकर्षक व्यक्तित्व, सुन्दर और हँसमुख राजकुमारों जैसा चेहरा मेरी आँखों के आगे मौजूद है।

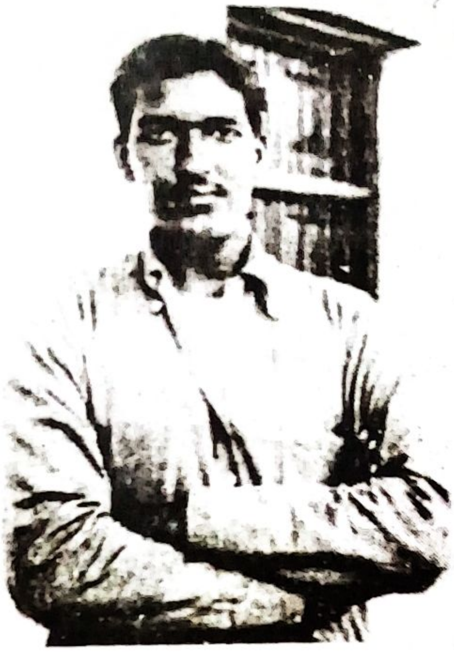
19 दिसम्बर, 1927 को फैजाबाद जेल में उन्हें फाँसी दे दी गई।

अशफाक इस संसार को छोड़कर अमर शहीद हो गये। साम्राज्यवाद ने उनके शरीर को मिटा डाला, पर अशफाक सदा-सदा के लिए भारतीयों के हृदय में अमिट हैं। देश के ऊपर न्योछावर होने वाले वीरों को भला कौन भूल सकता है? भारत को अपने जिन बेटों पर गर्व है, शहीद अशफाक का नाम उनमें सर्वोच्च श्रेणी में रखा जाएगा।

शहीद अशफाकउल्ला खाँ अक्सर जो गाया करते थे, उसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

मौत

बुजदिलों को ही सदा, मौत से डरते देखा,
गो कि सौ बार उन्हें, रोज ही मरते देखा।
मौत से वीर को, हमने नहीं डरते देखा,
तख्त-ए-मौत पै भी, खेल ही करते देखा।
मौत इक बार जब आना है, तो डरना क्या है,
हम सदा खेल ही समझा किये, मरना क्या है।
वतन हमेशा रहे शादकाम, औ' आज़ाद,
हमारा क्या है अगर हम रहे रहे न रहें।



शहीद अशफाकउल्ला खाँ जिन्हें 19 दिसम्बर, सन् 1927 को फैजाबाद जेल में फाँसी दी गई

हे मातृभूमि तेरी सेवा किया करूँगा,
मुश्किल हजार आवें हरगिज न मैं न डरूँगा।
निश्चय यह कर चुका हूँ इसमें नहीं है सन्देह,
तेरे लिए जिऊँगा, तेरे लिए मरूँगा।
फाँसी मिले मुझे या हो जन्म कैद मेरी,
बेड़ी बजा-बजाकर तेरा भजन करूँगा।
फटूटा ये मूंज का फिर फूलों की सेज होगी,
इसको बिछा के तेरी जव गोद में पड़ूँगा।
चक्की की हो मशक्कत या राम बाँस, कोल्हू,
सब कुछ मैं तेरी खातिर माता किया करूँगा।



शहीद अशफाकउल्ला खाँ फाँसी के बाद का चित्र

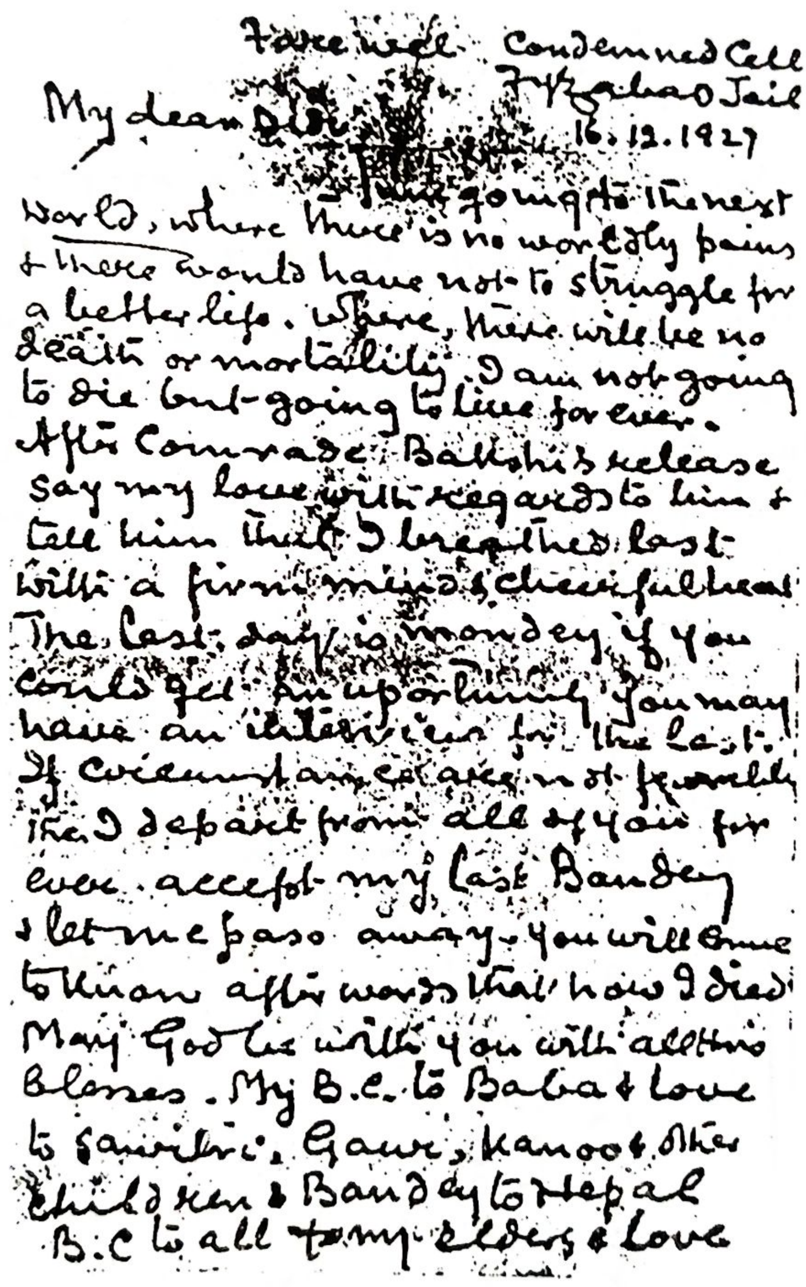
जिन्दगी वादे फना तुझको मिलेंगी हसरतें,
तेरा जीना मेरे मरने की बदौलत होगा।



फैजाबाद जेल में फाँसी-स्थल का चित्र

कुछ आरज़ू नहीं है,
है आरज़ू तो यह है,
रख दे कोई ज़रा सी,
खाके वतन कफन में।

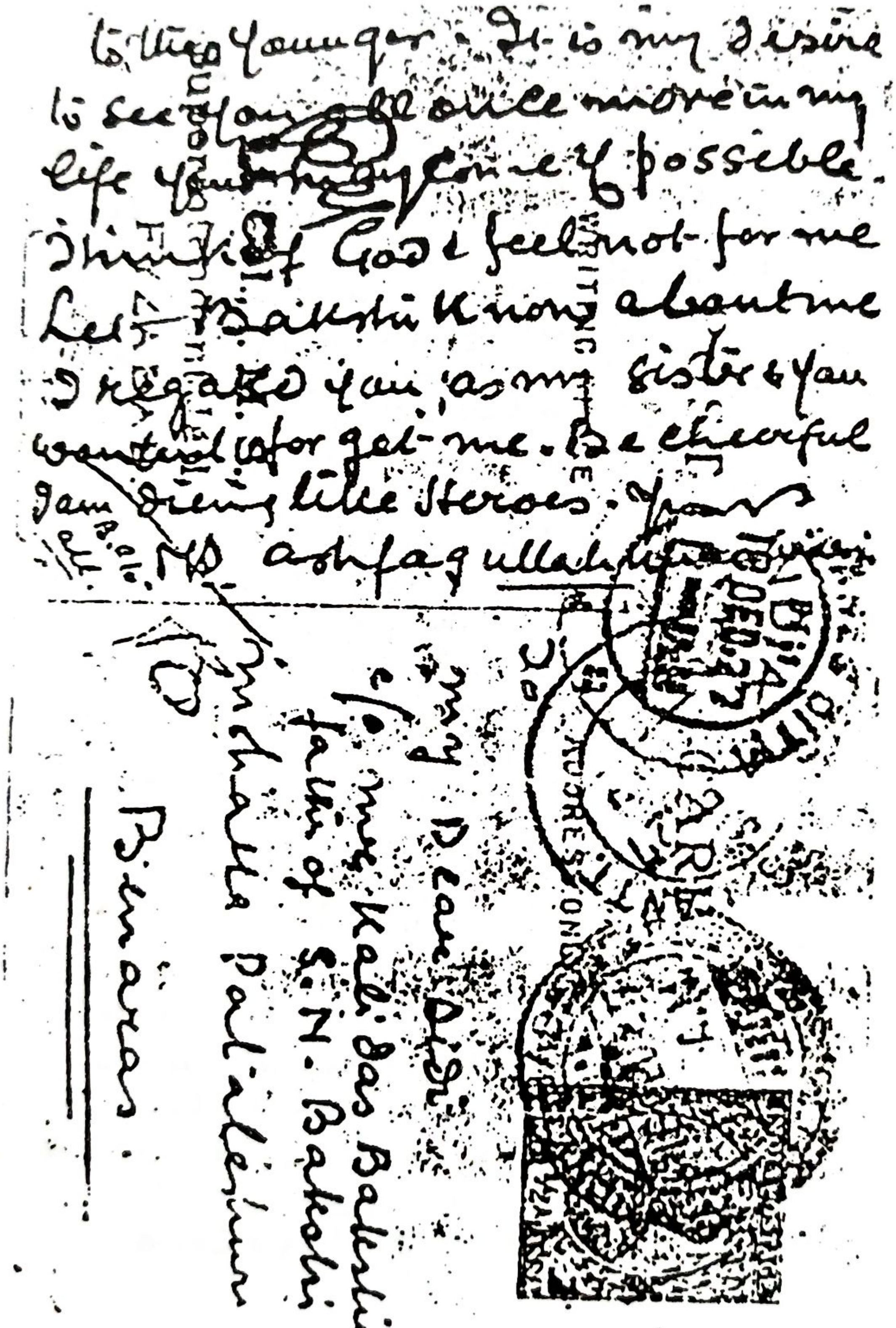
फाँसी दिए जाने के तीन दिन पूर्व दिनांक 16 दिसम्बर 1927 को अशफाउल्ला खाँ 'वारसी' द्वारा फैजाबाद जेल से शचीन्द्रनाथ बख्शी की दीदी को अंग्रेजी में लिखे गये पत्र को पढ़कर उनकी निडरता, मनोबल तथा जीवन के प्रति उनके दार्शनिक विचारों का अन्दाजा लगाया जा सकता है।



Farewell Condemned Cell
Fyzabad Jail
16.12.1927

My dear Didi

I am going to the next world, where there is no worldly pains & there would have not to struggle for a better life. Where, there will be no death or mortality. I am not going to die but going to live for ever. After Comrade Bakshi's release say my love with regards to him & tell him that I breathed last with a firm mind & cheerful heart. The last day is Monday if you could get an opportunity you may have an interview for the last. If circumstances are not favourable then I depart from all of you for ever. accept my last Bandey & let me pass away. You will come to know afterwards that how I died. May God be with you with all His blesses. My B.C. to Baba & love to Savitri, Gauri, Kanoo & other children & Banday to Nepal B.C to all of my elders & love



to the younger. It is my desire
to see you all once more in my
life you [illegible] come if possible.
Think of God & feel not for me
Let Bakshi know about me
I regard you as my sister & you
won't forget me. Be cheerful
I am dying like Heroes. Yours
Ashfaqullah

My Dear Sister
Mrs Kali Das Bakshi
c/o father of S.N. Bakshi
Mohalla Dalikhun
Benaras.

Ferewell

Condemned Cell
Fyzabad Jail
17-12-1927

My dear Didi,[1]

I am going to the next world, where there is no worldly pains & there would have not to struggle for a better life, where, there will be no death or mortality. I am not going to die but going to live for ever. After comrade Bakshi's release say my love with regards to him & tell him that I breathed last with a firm mind & cheerful heart. The last day is monday if you could get an opportunity you may have an interview for the last. If circumtances are not feasible then I depart from all of you for ever accept my last Bandey & let me pass away. You will come to know afterwards that how I died. May God be with you with all His Blesses. My B.C.[2] to Baba[3] & love to Savitri,[4] Gour,[5] Kanoo[6] & other children & Bandey to Nepal.[7] B.C. to all to my elders & love to the youngers. It is my desire to see you all once more in my life you may come if possible. Think of God & feel not for me. Let Bakshi know about me. I regard you as my sister & you wouldn't for get me. Be cheerful I am dieing like Heroes. Yours

B.C. to
all.

MD ashfaq ullahkhan 'warsi'

To

My Dear Didi
c/o Mr Kali das Bakshi
father of S.N. Bakshi
Mohalla Pataleshar
Benaras

---

1. Didi–elder sister of Shachindra Nath Bakshi
2. B.C.–Bendey Charan
3. Baba–father of Shachindra Nath Bakshi
4. Savitri–dauthter of eldest sister of Shachindra Nath Bakshi
5. Gour–son of eldest sister of Shachindra Nath Bakshi
6. Kanoo–son of eldest sister of Shachindra Nath Bakshi
7. Nepal–younger brother of Shachindra Nath Bakshi

फांसी दिये जाने के तीन दिन पहले फैजाबाद जेल से श्री अशफाकउल्ला खाँ 'वारसी' द्वारा श्री शचीन्द्र नाथ बख्शी के दीदी को लिखे पत्र का हिन्दी अनुवाद

विदाई

काल कोठरी
फैजाबाद जेल
16-12-1927

प्रिय दीदी,

मैं दूसरी दुनिया जा रहा हूँ, जहाँ न दुनियादारी की तकलीफें हैं और न जहाँ बेहतर जिन्दगी के लिये और संघर्ष करना पड़ेगा, जहाँ न मौत होगी, न विनाश होगा। मैं मरने नहीं जा रहा हूँ, बल्कि हमेशा के लिए जीने जा रहा हूँ। कॉमरेड बख्शी की रिहाई के बाद मेरा आदर सहित उन्हें प्यार कहियेगा और कहियेगा कि मैंने अन्तिम साँस दृढ़ विचार व प्रसन्न हृदय से ली। आखिरी दिन सोमवार का है, अगर आपको मौका मिले तो एक अन्तिम भेंट कर सकती हैं। अगर परिस्थितियाँ सम्भव न हो तो मैं आप सबसे हमेशा के लिए विदा लेता हूँ। मेरा अन्तिम बन्दे स्वीकार करे और मुझे मौत को गले लगाने दें। आपको बाद में मालूम होगा कि मैंने कैसे मौत को गले ल गाया। ईश्वर आपके साथ हो अपने आशीर्वाद के साथ। बाबा को मेरा प्रणाम और सावित्री, गौर, कानू और अन्य बच्चों को मेरा पर और नेपाल को बन्दे। सभी बड़ों को प्रणाम और छोटों को प्यार। अपनी जिन्दगी मं आप सभी को एक बार और देखने की ख्वाहिश है, सम्भव हो तो आप आयें। ईश्वर को याद करें और मेरे लिए दुःखी न हो। बख्शी को मेरे बारे में बताइयेगा। मैं अपनी बहन की तरह आपकी श्रद्धा करता हूँ और आप मुझे न भूलियेगा। प्रसन्न रहें। मैं एक वीर की तरह मर रहा हूँ।

सभी को प्रणाम—

आपका
अशफाकउल्ला खाँ 'वारसी'

A Message from the brinks of the Grave

–Ashfaq Warsi Hasrat

मर मिटा आप पे कौन, आपने यह भी न सुना,
आपकी जान से दूर, आपसे शिकवा है मुझे।

बिरादराने वतन की खिदमत में उनके उस भाई का सलाम पहुंचे जो उनकी इज्जत व नामूसे वतन की खातिर फैजाबाद जेल में कुरबान हो गया। आज जबकि मैं यह पैगाम बिरादराने वतन को भेज रहा हूँ, इसके बाद मुझको तीन दिन और चार रातें और गुजारना है और फिर मैं हूँगा और आगोश मादरे वतन होगा। हम लोगों पर जो चार्जेज़ लगाए गए थे वह इस सूरत में पब्लिक के सामने लाये गए कि हमको बहुत से लोग जो गैर तालीमयाफ्ता या हुकूमत के दस्तेख्वां की पस खुर्दा हड्डियाँ चिचोड़ने वाले थे डाकू, खूनी, कातिल की लकब से पुकारा किए। मैं आज इस फाँसी की कोठरी में बैठा हुआ भी खुश हूँ और अपने उन भाइयों का शुक्रिया अदा करता हूँ और कहूँगा–

मर मिटा आप पे कौन, आपने यह भी न सुना,
आपकी जान से दूर, आपसे शिकवा है मुझे।

ख़ैर यह तुम्हारा फैल है कि हमारी कुरबानियों को कुबूल न करो और यह हमारा फर्ज है कि तुम बार-बार ठुकराओ और हम तुम्हारा ही दम भरे जाएँ। बिरादराने वतन मैं उसी पाक मुकद्दस वतन की ही कसम खाकर कहूँगा कि हम नंगे नामूसे वतन पर कुरबान हो गए। क्या यह शर्म की बात न थी कि हम अपनी आँखों से देखते कि नित नए मुजालिम हो रहे हैं। और गरीब हिन्दुस्तानी हर हिस्सा-ए-मुल्क और खित्तए दुनिया में जलील व रुसवा हो रहे हैं और कहीं

न ठिकाना है, न सहारा, किस्सा मुखतसिर कि हमारा वतन भी हमारा नहीं। हम पर टैक्स की भरमार, हमारी माली हालत का रोज-ब-रोज गिरता चला जाना, 33 करोड़ बहादुर हिन्दुस्तानी, गैर मुसल्ला, भेड़-बकरियों के मानिन्द बनाए गए, हमारे गोरे आका हमें ठोकरें मारें तो उनसे बाज पुर्स न हो। जनरल डायर अगर जलियाँवाला बाग को नमूने हस्र बना दे, हमारी माँओं की बेइज्जती करें, हमारे बूढ़ों और बच्चों पर बम के गोले और गन मशीनों की गोलियाँ बरसाएँ और हर नया दिन हमारे लिए नई मुसीबत लेकर आए और फिर भी हम बाजए गफलत पिटें और ऐशो-इशरत में अइयामे नवजवानी गुजार दें, यह खयाल करके -

जुनूने हुब्बे वतन का मजा सबाब में है,
लहू में फिर से रवानी रहे न रहे।

जो भी किया, भला किया। आज हम नाकाम रहे, डाकू हैं, कामयाब होते मुहिब्बे वतन के पाक लकब से पुकारे जाते। आज जो हम पर झूठी गवाहियाँ देने गए हैं, हमारे नाम के जयकारे लगाते—

है बहरे फना में जल्दियारब नाश बिसमिल की,
कि होकि मछलियाँ हैं, जौहरे शमशीर कातिल की।

आह, ऐसे दौर में जिन्दगी प्यारी ख्याल की जा सकती है, जबकि हमारे ही दरो सियासी में खलफिसार मची है, कोई तबलीग का दिलदाजा है तो कोई सुध्धी को बाइसे नजात समझ रहा है। मुझे तो रह-रह के गम, उन दिमागों और अक्लों पर आ रहा है, जो कि बेहतरीन दिमाग हैं और माहेरीन सियासत हैं। काश कि वह आजादी मिस्र की जद्दोजहद एहरारान मिश्र के कारनामे और बरतानी सियासी चालें स्टडी कर लें और फिर हमारे हिन्दुस्तान की मौजूदा हालत से मुकाबिला व मुआज न करें। क्या ठीक वही हालत इस वक्त नहीं है। गवर्नमेण्ट के खुफिया एजेण्ट प्रोपेगण्डा इस वक्त मजहबी बुनियाद पर फैला रहे हैं। इन लोगों का मकसद किसी के भी मजहब की हिफाजत या तरक्की नहीं है बल्कि चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाना है। मेरे पास वक्त नहीं और न मौका है कि सब कच्चा चिट्ठा खोल कर रख देता। जो मुझको अइयामे फरारी और उसके बाद मालूम हुआ है और यहाँ तक मुझको मालूम हुआ है कि मौलवी नियामतउल्ला कादियानी कौन था जो काबुल में संग रक्खा गया था वह ब्रिटिश एजेण्ट था जिसके पास हमारे करम फरमा तसद्दुक हुसेन साहब डिप्टी सुपरिटेण्डेण्ट गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया बहुक्म

गवर्नमेण्ट पैगाम लेकर गए थे, मगर बेदार मग्ज़ हुकूमत काबुल ने इलाज जल्द कर दिया और मर्ज को फैलने न दिया। मैं अपने हिन्दू और मुसलमान भाइयों को बता देना चाहता हूँ कि सब ढोंग है। जो सी. आई. डी. के खुफिया खजाने के रुपये से रचा गया है। मैं मर रहा हूँ और वतन पर मर रहा हूँ। मेरा फर्ज है कि हर नेक व बद बात भाइयों तक पहुँचा दूँ। मानना न मानना उनका काम है। मुल्क के बड़े-बड़े लोग इससे बचे हुए नहीं हैं। पस अवाम को आँखें खोल कर इत्तिबा करना चाहिए। भाइयो, तुम्हारी खाना जंगी, तुम्हारी आपस की फूट, तुम दोनों में किसी के भी सूदमन्द साबित न होगी, यह गैरमुमकिन है कि सात करोड़ मुसलमान शुद्ध कर लिए जाएँ और वैसे ही यह भी मोहमिल सी बात है कि 22 करोड़ हिन्दू मुसलमान बनाए जाएँ। मगर हाँ, यह आसान और बिलकुल आसान कि यह सब मिलकर गुलामी का तौक गले में डाल लें। ये वह कौम कि जिसका कोई झंडा नहीं, ये वह कि तेरा वतन, तेरा अपना वतन नहीं, ये वह कि तू दूसरों की तरफ रहम की दरख्वास्त पर नजर रखने वाली बेकस कौम तेरी अपनी गलतियों का ही नतीजा है। आज तू गुलाम है और फिर भी गलतियाँ कर रही है कि आने वाली नस्लों के लिए भी वह धब्बा गुलामी छोड़ जाएगी कि जो भी सरजमीं हिन्द पर कदम रक्खेगा, गुलामी में रक्खेगा और गुलाम मरेगा। ये खुदा एकुद्दुस क्या ऐसा कोई सबेरा नहीं आएगा कि जिस सुबह को तेरा आफताब आजाद हिन्दोस्तान में चमके और फिजाए हिन्द आजादी के नारों से गूँज उठे, कांग्रेस वाले हों या स्वराजिस्ट शुद्धी वाले हों या कम्युनिस्ट हों या रिवल्यूशनरी, अकाली हो या बंगाली, मेरा पैगाम हर फरजन्दे वतन को पहुँचे। मैं हर शख्स को उनकी इज्जत व मजहब का वास्ता देता हूँ। अगर वह मजहब का कायल नहीं तो उसकी जमीर को और जिसको भी वह मानते हों, अपील करता हूँ कि हम काकोरी केस के मर जाने वाले नवजवानों पर तरस खाओ। और फिर हिन्दुस्तान को 1920 वाला हिन्दुस्तान बना दो। फिर अहमदाबाद जैसा इत्तहाद व इत्तफाक जैसा नज्जारा सामने हो बल्कि उससे बढ़ कर हो और मुकम्मिल आजादी का जल्द से जल्द ऐलान करके इन गोरे आकाओं को बता दो कि यह काले अब केचुल उतार चुके हैं और अब वह किसी मन्तर जन्तर से राम न होंगे। तबलीक व शुद्धी वालो खुदारा आँखें खोलो, कहाँ थे और कहाँ पहुँच गए। अपनी-अपनी शान खत्म करो, सोचो तो मजहब में जबरदस्ती एख्तिलाफ राय फिर जंग एक काम नामुकम्मिल छोड़ कर दूसरी जानिब रुजू हो गए। आज कोई ऐसा हिन्दू या मुसलमान जो मजहबी आजादी इतनी रखता है, जितना उसका हक है, क्या गुलाम कौम का

कोई मजहब होता है, तुम अपने मजहब का सुधार क्या कर सकते हो, तुम खुदा की इबालत पुरसुकून तरीके पर करो, तुम ईश्वर का ध्यान खामोशी से करो और दोनों मिल इस सफेद झूठ को मन्तर से जन्तर से उतार भगाओ। इसी की ये सारी कार्यवाही है, जब यह भूत उतर जाएगा, तुम्हारी आँखें खुल जाएँगी। आओ, हमारी भी सुनो, पहले हिन्दुस्तान आजाद करो फिर और कुछ सोचना। खुदा ने जिसके लिए जो रास्ता मुन्तखिब कर दिया वह उसी पर रहेगा, तुम किसी को नहीं हटा सकते। आपस में मिल-जुल कर रहो और फिर मुत्तहिद हो जाओ, नहीं तो सारे हिन्दुस्तान की बदवख्ती का वार तुम्हारी गर्दन पर है और गुलामी का बायस तुम हो। कम्युनिस्ट गिरोब से इत्तफाक की गुजारिश है कि तुम इस गैर मुल्क की तहरीक को लेकर जब हिन्दुस्तान में आए हो तब तुम अपने को गैर मुल्की ही तस्सौवर करते हो, देशी चीजों से नफरत, विदेशी पोशाक और तर्जे मासरत के दिलदाजा हो। इससे काम नहीं चलेगा। अपने असली रंग में आ जाओ, देश की चीजें इस्तेमाल करो, देश के लिए जिओ, देश के लिए मरो। मैं तुमसे काफी तौर से मुत्तफिक हूँ और कहूँगा कि मेरा दिल हमेशा गरीब किसानों के लिए और दुःखिया मजदूरों के लिए हमेशा दुःखी रहा है। मैं अपने अइयामे फरारी में भी अक्सर उनकी हालत देख कर रोया किया हूँ क्योंकि मुझको इनके साथ दिन गुजारने का मौका मिला है। मुझसे पूछो तो मैं कहूँगा कि मेरा बस हो तो मैं दुनिया की हर मुमकिन चीज उनके लिए वक्फ कर दूँ। हमारे शहरों की रौनक इनके दम से है, हमारे कारखाने इनके वजह से आबाद और काम कर रहे हैं। हमारे पम्पों से इनके हाथ पानी निकालते हैं। गरजे कि दुनिया का हर एक काम इनकी वजह से हुआ करता है। गरीब किसान बरसात के मूसलाधार पानी और जेठ-बैसाख की तपती दोपहर में भी खेतों में जमा होते और जंगलों में मंडलाते हुए हमारी खुराक का सामान पैदा करते हैं। यह बिलकुल सच है कि जो वह पैदा करते हैं जो वह बनाते हैं उनमें उनका हिस्सा नहीं होता और वह हमेशा दुखी और मफलूकुल हाल रहते हैं। मैं इत्तिफाक करता हूँ कि इन तमाम बातों के जिम्मेदार हमारे गोरे आका हैं और उनके एजेण्ट हैं, मगर इसका इलाज क्या है कि उनको उस हालत पर ले आए कि वह महसूस करने लगें कि वह क्या है, इसका वाहिद जरिया यह है कि तुम उन जैसी वजा कता अख्तियार करो और जैण्टलमैनी छोड़ कर देहात का चक्कर लगाओ, कारखानों में डेरे डालो और उनकी हालत को स्टडी करो, उनमें एहसास पैदा करो कि तुम कैथराइन मदर आफ रसिया की सामने उम्री पढ़ो और वहां के नवजवानों की कुरबानियां देखो, तुम कालर,

टाई, उम्दा सूट पहन कर लीडर मजदूर बन सकते हो, मगर किसानों और मजदूरों के लिए फायदेमन्द साबित नहीं हो सकते। दीगर पोलिटिकल जमातों से मुत्तहिद होकर काम करो और अपने मादए परस्ती से किनारा करो कि यह फिजूल है जो तुम्हें दूसरी जमातों से अलग किए हुए है। मेरे दिल में तुम्हारी इज्जत है और मैं मरते हुए भी तुम्हारी सियासी मकसद से बिलकुल मुत्तफिक हूँ। मैं हिन्दुस्तान की ऐसी आजादी का ख्वाहिशमन्द था जिसमें गरीब खुश और आराम से रहे और सब बराबर होते। खुदा मेरे बाद जल्द वह दिन लाए जबकि छतर मंजिल लखनऊ में अबदुल्ला मिस्त्री, लोको वर्कशाप और धुनियां चमार किसान भी खलीकुज्जमा और पं0 जगत नारायण और राजा महमूदाबाद के बराबर कुरसी पर बैठे नजर पड़े। मेरे कामरेड, मेरे क्रान्तिकारी भाइयो, तुमको क्या कहूँ और तुमको क्या लिखूँ। बस, यह तुम्हारे लिए क्या कम मसर्ररत की बात होगी। जबकि तुम सुनोगे कि तुम्हारा एक भाई हँसता हुआ फाँसी पर चला गया और मरते-मरते खुश था। मैं खूब जानता हूँ कि जो स्प्रिट तुम्हारा तबका रखता है क्योंकि मुझको भी फख्र है और बहुत ज्यादा फख्र है कि एक सच्चा क्रान्तिकारी होते हुए मर रहा हूँ। मेरा पैगाम तुम तक पहुँचाना फर्ज था। मैं खुश हूँ, मसरूर हूँ, मैं एक सिपाही की तरह हूँ जो फायरिंग लाइन में बँधा हुआ चल रहा हूँ और खंदकों में बैठा हुआ गा रहा हूँ। मैं दो शेर हशरत मुहानी का लिखता हूँ–

जान को महुब गम बना, दिल को वफा निहाद कर,
बन्द ए इश्क है तू यूं किता रह मुराद कर।

हजार दुःख क्यों न आएँ बजुज खार दरमियान में मौजें मारें, आतिशि पहाड़ क्यों न हायल हो जाएँ, मगर ये आजादी के शेरो अपने-अपने गर्म खून को मातृभूमि पर छिड़कते हुए और अपनी जानों को मातृवेदी पर कुरबान करते हुए आगे बढ़े चलो, आगे बढ़े चले जाओ, क्या तुम खुश न होगे जब तुमको मालूम होगा कि हम हँसते हुए मर गए। मेरा वजन जरूर कम हो गया है और बहुत कम हो गया है और वह मेरे कम खाने की वजह से हो गया है। किसी डर या दहशत से नहीं हुआ है और मैं कन्हाई लाल दत्त की तरह वजन नहीं बढ़ा सका। मगर हाँ, खुश हूँ और बहुत खुश हूँ। क्या मेरे लिए इससे बढ़कर कोई इज्जत हो सकती है कि सबसे पहला और अव्वल मुसलमान हूँ जो आजाद-ए-वतन की खातिर फांसी पर जा रहा हूँ।

मेरे भाइयो, मेरा सलाम लो और इस नामुकम्मिल काम को जो हमसे रह

गया है, तुम पूरा करना। तुम्हारे लिए यू0 पी0 में मैदाने अमल तैयार कर दिया, अब तुम जानो और तुम्हारा काम जाने। इससे उम्दा मौका तुम्हारे हजार प्रोपेगण्डे से भी न होता। स्कूलों और कालेजों के तुलबा हमारी तरफ दौड़ रहे हैं। अब तुम्हें बहुत अरसे तक दिक्कत न होगी।

उठो उठो सो रहे हो नाहक, पयामे मांग जर्स तो सुन लो
बढ़ो कि कोई बुला रहा है निशाने मंजिल दिखा दिखाकर।

ज्यादा क्या लिखूँ। सलाम लो, कमर हिम्मत बाँध लो और मैदान अमल में आन पहुँचो, खुदा तुम्हारे साथ हो। मेरी मुल्की तुहद्दा जमाअत सियासी और उसके लीडर्स मेरा सलाम कुबूल करें और तुम हम लोगों को उस नजर से न देखना जिस नजर से दुश्मनाने वतन देखते थे। न हम डाकू थे, न कातिल—

कहाँ गया कोहेनूर मेरा, किधर गई हाय मेरी दौलत,
वह सबका सब लूट करके, हमी को डाकू बना रहे हैं।

हमीं को दिन दहाड़े लूटा और फिर हमीं डाकू हैं। हमारे ही भाई, बहिनों बच्चों को जलियाँवाला बाग में भूँज डाला और अब हमीं को फैसलों में लिखा जाता है। अगर हम ऐसे हैं तो वह कैसे हैं, और किस खिताब से पुकारे जाने के काबिल हैं जिन्होंने हिन्दुस्तान का सुहाग लूटा लिया, जिन्होंने लाखों वहादुरों को अपनी गरज के लिए मैसोपाटामिया और फ्रांस के मैदान में सुलवा दिया। खूनख्वार जानवर, जालिम दरिन्दे वह हैं, या हम? हम बेबस थे, कमजोर थे, सब कुछ सुन लिया और ये वतनी भाइयो, तुमने सुनवाया आओ फिर मुत्तहिद हो जाओ फिर मैदाने अमल में कूद पड़ो और मुकम्मिल आजादी का ऐलान कर दो। अच्छा, अब रुखसत होता हूँ और हमेशा के लिए खैर बात कहता हूँ। खुदा तुम्हारे साथ हो और फिजा-ए-हिन्द पर आजादी का झण्डा जल्द लहराए। मेरे पास न वह ताकत है कि हिमालिया की चोटी पर पहुँच कर एक आवाज ऐसी निकालूँ जो हर शख्श बेदार कर दे और न वह असबाब हैं जिससे मैं तुम्हारे दिल पर मुस्तैल कर दूँ कि तुम उसी जोश से आगे बढ़ कर खड़े हो जाओ जैसे 1920 में थे। मैं चन्द सतूर के बाद रुखसत होता हूँ। बाद को मैं अपने उन भाइयों से रुखसत शुक्रिये के साथ होता हूँ जिन्होंने हमारी मदद जाहिर तौर पर की या पोशीदा; और यकीं दिलाऊँगा कि अशफाक आखिर दम तक सच्चा रहा और खुश-खुश मर गया और खयानते वतनी का उस पर जुर्म नहीं लगाया जा सकता। वतनी

भाइयो, से गुजारिश है कि मेरे बाद मेरे भाइयों के वक्त जरूरत न भूलें और उनकी मदद करें व खयाले वतन रक्खें। वतन पर मर मिटने वाला अशफाक वारसी हशरत फैजाबाद जेल।

मेरी तहरीर मेरे वतनी भाइयों तक पहुँच जाए, ख्वाह वह देहाती ही अखबार के जरिए से या अंग्रेजी या हिन्दी या उर्दू में छपवा कर कांग्रेस के अइयाम में छपवा कर तखसीम कर दें। मसकूर हूँगा। मेरा सलाम कुबूल करें और मेरे भाइयों को न वह कभी भूलें और न मेरे वतनी भाई फरामोश करें।

अलविदा,

अशफाकउल्ला वारसी हशरत,
फैजाबाद जेल।
16-12-1927

सुनाएं गम की किसे कहानी, हमें तो अपने सता रहे हैं,
हमेशा सुबहो शाम वे दिल पर सितम के खंजर चला रहे हैं,
न कोई इगंलिश न कोई जर्मन न कोई रशियन न कोई टर्की,
मिटाने वाले हैं अपने हिन्दी जो आज हमको मिटा रहे हैं,
कहां गया कोहेनूर हीरा किधर गई हाय मेरी दौलत,
वह सबका सब लूट करके उल्टा हमीं को डाकू बना रहे हैं,
जिसे फना वह समझ रहे हैं, बका कहे बाज उसी में मुजमिर,
नहीं मिटाने से मिट सकेंगे वह लाख हमको मिटा रहे हैं,
जो है हुकूमत वह मुद्दई है जो हैं अपने भाई हैं बने वह दुश्मन,
गजब में जान अपनी आ गई है कजा के पहलू में जा रहे हैं।

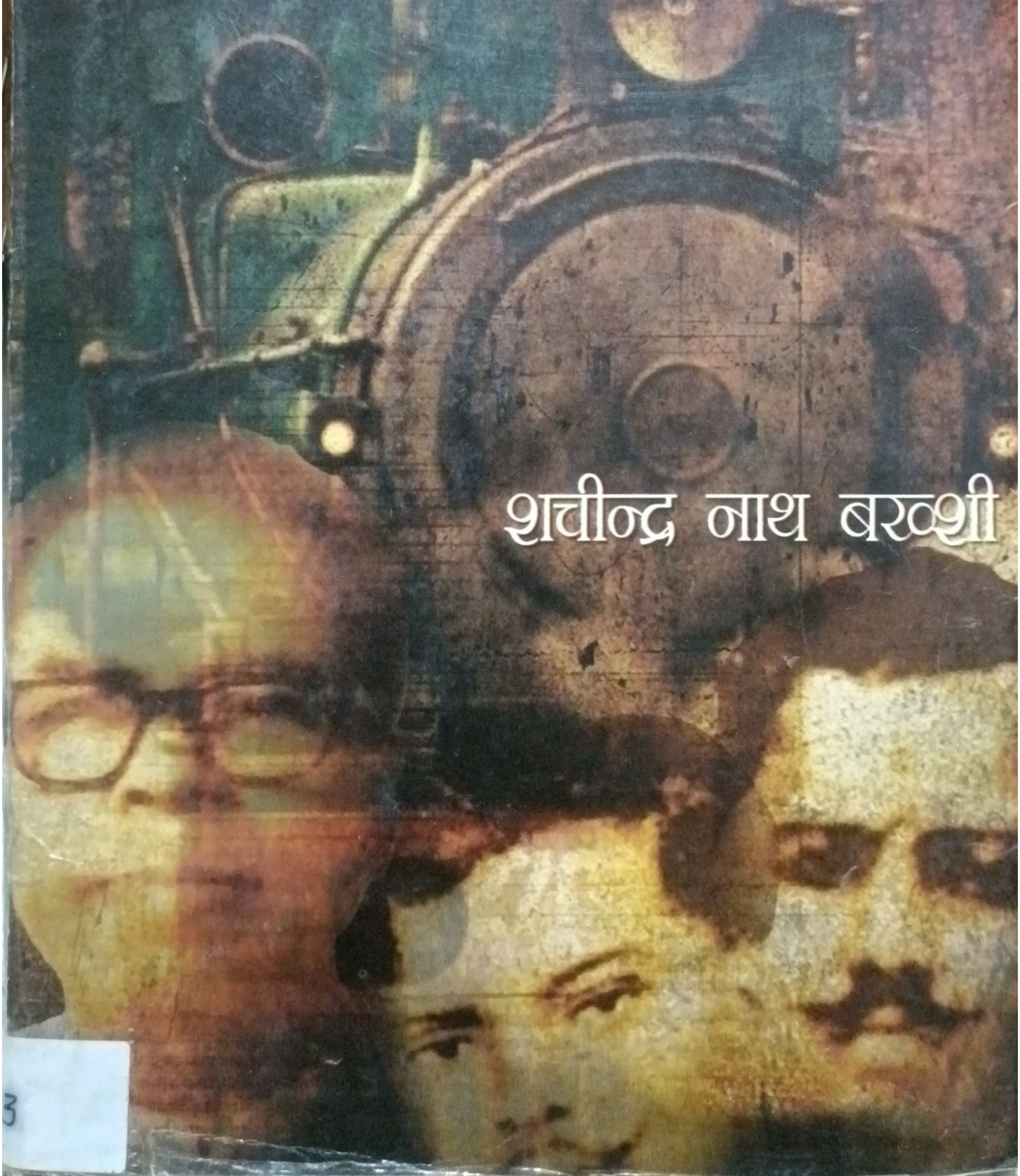
चलो चलो यारो रिंग थियेटर दिखाएं तुमको वहां पर लिबरल
जो चन्द टुकड़ों पे सीमो जर के नया तमाशा दिखा रहे हैं।

खामोशे हसरत खामोशे हसरत अगर है जजबा वतन का दिल में
सज़ा को पहुचेंगे बेशक जो आज हमको फँसा रहे हैं।

हे मातृभूमि तेरी सेवा किया करूँगा,
मुश्किल हजार आवें हरगिज न मैं डरूँगा।
निश्चय यह कर चुका हूँ इसमें नहीं है सन्देह,
तेरे लिए जिऊँगा तेरे लिए मरूँगा।
फाँसी मिले मुझे या हो जन्म कैद मेरी,
बेड़ी बजा-बजा कर तेरा भजन करूँगा।
फट्टा ये मूंज का फिर फूलों की सेज होगी,
इसको बिछा के तेरी जब गोद में पड़ूँगा,
चक्की की हो मशक्कत या राम बांस कोल्हू,
सब कुछ मैं तेरी खातिर माता किया करूँगा।

वतन पर मरने वालों का...

शचीन्द्र नाथ बख्शी



17 दिसम्बर जिसकी याद दिलाता है

शहीद राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी

(इस लेख को पढ़कर पं. वचनेश त्रिपाठी, तत्तकालीन सम्पादक 'तरुण भारत' व 'राष्ट्र धर्म' ने अपने उद्गार प्रकट किए थे, जिसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है)

देश के जीवित क्रान्तिकारियों में श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी का प्रमुख स्थान है, आपको प्रसिद्ध 'काकोरी काण्ड' में कालेपानी की सज़ा हुई थी। बख्शी जी एक अच्छे लेखक भी हैं—उनकी लेखनी में वैचारिक क्रान्ति के बीज बोने की क्षमता है। बख्शी जी स्वयं 'काकोरी काण्ड' के एक सक्रिय पात्र थे—अतः उनकी प्रामाणिक लेखनी से प्रसूत यह लेख पाठकों को घटना की सही जानकारी तो देगा ही, साथ ही देश के लिए जीने-मरने की भावना भी जगायेगा। जब किसी शहीद को फाँसी लगती थी, तो उस वक्त लोग कहा करते थे कि 'शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले'—खेद है कि आजाद भारत में इस तरह के 'शहीद मेले' देखने में नहीं आते, अतः शहीदों की स्मृति में लिखा गया यह लेख पाठकों के हृदयों में सहज ही एक कसक, एक दुर्निवार वेदना भी पैदा करेगा कि कितने अभागे हैं हम, कितने विपथ में जाकर वह देश कि देश के लिए फाँसी का फंदा चूमने वाले देशभक्तों को भी वह भुलाता जा रहा है जबकि वे हमसे आशा रखते कि 'याद कर लेना हमें भी कभी भूलेभटके' लेकिन हम भूलेभटके भी उन्हें याद नहीं कर पा रहे जो वस्तुतः एक अपराध ही है।

—वचनेश त्रिपाठी

सन् 1925 के 10 अगस्त का प्रभात। लोगों ने एक बहुत सनसनीखेज खबर अखबारों में पढ़ी कि 9 अगस्त की शाम को लखनऊ के पास काकोरी और आलमनगर स्टेशनों के बीच, लखनऊ आने वाली पैसेंजर ट्रेन रोककर रेलवे खजाना

लूट लिया गया। उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ के पास इस प्रकार पैसेंजर ट्रेन रोककर खजाना लूटने से सनसनी पैदा होना लाजिमी था। अखबारों में तरह-तरह के अटकल लगाये गये, लेकिन उस डकैती में कोई पकड़ा नहीं गया।

वह जमाना अंग्रेजी राज का था। उन दिनों 'अंग्रेजी साम्राज्य' दुनिया में सबसे ज्यादा फैला हुआ था और यह बात काफी मशहूर और सच थी कि 'ब्रिटिश साम्राज्य' पर से सूर्य कभी डूबता ही नहीं—भारत में उसका सूरज डूबा तो उसी वक्त से दुनिया के दूसरे हिस्से के ब्रिटिश साम्राज्य में सूरज चमक रहा है—ब्रिटिश साम्राज्य सारे विश्व में फैला हुआ था। उस समय संसार की सैनिक शक्ति में ब्रिटिश का सर्वप्रथम स्थान था।

उस जमाने में कांग्रेस का कोई आन्दोलन नहीं था। सन् 1921 का असहयोग आन्दोलन असफल होने के बाद, उस असफलता की प्रतिक्रियास्वरूप देश में बड़ी निराशा छा गई थी। निष्क्रियता का बोलबाला था और कांग्रेस का बड़े से बड़ा नेता सोचता था कि वह अपनी जिन्दगी में औपनिवेशिक स्वराज्य भी शायद देख नहीं सकेगा। ऐसा ही निराशा का वातावरण था वह।

अंग्रेजों की बड़ी जबरदस्त धाक और धौंस थी। वे एक श्रेष्ठ जाति माने जाते थे। एक-एक जिले में दो-चार से ज्यादा अंग्रेज अफसर नहीं थे—लेकिन धाक के सहारे और धौंस के बल पर लाखों-करोड़ों लोगों पर वे छाये हुए थे। कोई सिर नहीं उठा सकता था। ऐसे वातावरण में और ऐसे जमाने में अंग्रेज सरकार का खजाना लूटा जाना एक अनहोनी बात थी। मानो 'आनन्द मठ' का पुनराभिनय शुरू हो गया था। अंग्रेजों का शासन हिल उठा। 26 सितम्बर 1925 में सारे सूबे भर में तलाशियाँ ली गईं और बहुत से क्रान्तिकारी पकड़े गये। लखनऊ में स्पेशल मजिस्ट्रेट के इजलास में काकोरी षड्यन्त्र केस का मुकदमा चला और स्पेशल सेशन जज ने आखिरी सज़ा सुनाई। मुकदमे के दौरान पता चला कि उस ट्रेन में 13 सशस्त्र सरकारी आदमी थे, जिनमें अंग्रेज अफसर भी था, लेकिन उनमें से किसी को तथाकथित डकैती का विरोध करने की हिम्मत नहीं हुई। मुकदमे से देशवासियों को मालूम हुआ कि सभी अभियुक्त "हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन" यानी "भारतीय प्रजातन्त्र दल" नामक संस्था के सदस्य थे। संस्था का उद्देश्य था—सुसंगठित और सशस्त्र क्रान्ति द्वारा भारतीय प्रजातन्त्र संघ स्थापित करना। सार्वजनिक मताधिकार की नींव पर इस प्रजातन्त्र-संघ का संगठन होगा और उस प्रजातन्त्र संघ में उन सब व्यवस्थाओं का अन्त कर दिया जायगा जिनसे कि मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण हो सकने का अवसर मिल सकता हो।

पं. वचनेश त्रिपाठी, तत्कालीन सम्पादक 'तरुण भारत' व 'राष्ट्रधर्म' ने इस लेख को पढ़ कर अपने उद्‌गार प्रकट किए थे, जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है।

"काकोरी षड्यन्त्र केस" अपने जमाने का सबसे बड़ा क्रान्तिकारी मुकदमा था और विशुद्ध राजनीतिक मुकदमा था। अभियोग से राजनीतिक धारा हटा लेने पर डकैती का आरोप किसी हालत में किसी के ऊपर सिद्ध नहीं हो सकता था।

इण्डियन पेनल कोड की तीन धाराएँ लगायी गयी थीं। पहली धारा 121-ए यानी 'बादशाह को ब्रिटिश भारत के तख्त से वंचित करने की कोशिश और साजिश करना।

दूसरी धारा 120-बी यानी 'उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए षड्यन्त्र करना' और आखिरी धारा थी 396 यानी 'डकैती सहित कत्ल।'

'काकोरी षड्यन्त्र केस' और 'काकोरी पूरक षड्यन्त्र केस' में स्पेशल जज ने 20 अभियुक्तों को निम्नलिखित सज़ायें दीं—

1. श्री रामप्रसाद बिस्मिल—पहली दो धाराओं के अनुसार आजन्म काला पानी, तीसरी के अनुसार फाँसी।
2. श्री राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी—पहली दो धाराओं के अनुसार आजन्म काला पानी, तीसरी के अनुसार फाँसी।
3. श्री रोशन सिंह—पहली दो धाराओं के अनुसार 5-5 साल की सख्त कैद और तीसरी के अनुसार फाँसी।
4. श्री अशफाकउल्ला खाँ—पहली दो धाराओं के अनुसार आजन्म काला पानी, तीसरी के अनुसार फाँसी।
5. श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल—आजन्म काला पानी, पहली दो धाराओं के अनुसार।
6. श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी—आजन्म कालापानी, तीनों धाराओं के अनुसार।
7. श्री मन्मथनाथ गुप्त—चौदह साल की सख्त कैद।
8. श्री मुकुन्दीलाल—दस साल की सख्त कैद।
9. श्री गोविन्दचरण कर—दस साल
10. श्री राजकुमार सिन्हा—दस साल
11. श्री रामकृष्ण खत्री—दस साल
12. श्री जोगेशचन्द्र चटर्जी—दस साल
13. श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य—सात साल
14. श्री विष्णुशरण दुबलिश—सात साल
15. श्री रामदुलारे त्रिवेदी—पाँच साल
16. श्री प्रेमकृष्ण खन्ना—पाँच साल
17. श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल—पाँच साल

18. श्री प्रणवेश चटर्जी—पाँच साल
19. श्री रामनाथ पाण्डेय—पाँच साल
20. श्री बनवारीलाल—इकबाली मुजरिम

अपील में सर्वश्री मुकुन्दी लाल, गोबिन्दचरण कर और जोगेशचन्द्र चटर्जी की सज़ायें बढ़ाकर आजन्म काला पानी कर दी गईं। श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य और श्री विष्णुशरण दुबलिश की सज़ायें 7-7 वर्ष से बढ़ाकर दस-दस वर्ष कर दी गईं। इकबाली मुलजिम बनवारी लाल दो साल बाद छोड़ दिया गया।

यहाँ पर यह बता देना उचित होगा कि उपर्युक्त 20 व्यक्तियों में निम्नलिखित सात आदमी काकोरी ट्रेन डकैती में शामिल थे—

1. श्री रामप्रसाद बिस्मिल
2. श्री अशफाकउल्ला खाँ
3. श्री राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी
4. श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी
5. श्री मन्मथनाथ गुप्त
6. श्री बनवारीलाल
7. श्री मुकुन्दीलाल

ट्रेन डकैती में और तीन आदमी भी थे—जिनके खिलाफ कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सका क्योंकि वे पकड़े नहीं जा सके थे। वे थे—

1. श्री चन्द्रशेखर आजाद—जो आखिर तक आजाद ही रहे, कभी पकड़े नहीं जा सके और सन् 1931 में 27 फरवरी के दिन इलाहाबाद के अलफ्रेड पार्क में सशस्त्र पुलिस से लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की।
2. श्री केशवचन्द्र चक्रवर्ती—बनारस के प्रसिद्ध तैराक जिन्होंने बाद में कलकत्ता के एक बम केस में सज़ा पायी।
3. श्री मुरारीलाल शर्मा—काशी विद्यापीठ के विद्यार्थी, जिनकी शायद कई साल बाद साँप के काटने से मृत्यु हुई।

बनारस के मजबूत संगठन में कोई मुखबिर पैदा नहीं हुआ, इस कारण बनारस के शेष दोनों क्रान्तिकारी पकड़े नहीं गये।

राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी की जीवन-झाँकी

'काकोरी षड्यन्त्र केस' के शहीदों में राजेन्द्र लाहिड़ी का गोंडा वालों के साथ निकटतम सम्बन्ध स्थापित हो गया। 17 दिसम्बर, 1927 के दिन प्रातःकाल गोंडा जिला जेल में आप फाँसी पर चढ़ा दिये गये। उनके शव का दाह-संस्कार गोंडा

में ही हुआ। गोंडा निवासी बड़ी धूमधाम के साथ वेदमन्त्र पढ़ते हुए और भारत माता की जय-ध्वनि करते हुए उनकी अर्थी ले गये।

राजेन्द्र लाहिड़ी का पूरा नाम राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी था। वह अपनी धुन के पक्के, प्रतिभा-सम्पन्न, स्वस्थ तथा सुन्दर बंगाली नवयुवक थे। देशभक्ति आपकी पैतृक सम्पत्ति थी। आपके पिता श्री क्षितिजमोहन लाहिड़ी बड़े ही उदार और लोकोपकारी व्यक्ति थे। उन्होंने जनता के कल्याण के लिए अनेक कार्य किए। अपने गाँव में एक हाईस्कूल खोला और 'बंग-भंग' के समय आपने स्वदेशी आन्दोलन में बड़ा भाग लिया।

राजेन्द्र लाहिड़ी का जन्म सन् 1901 के जून महीने में बंगाल के पबना जिले के एक गाँव में हुआ। देश का विभाजन मानकर कांग्रेस नेताओं ने वह सब पूर्व बंगाल का हिस्सा पूर्वी पाकिस्तान (अब बांगलादेश) बना दिया है। लाहिड़ी प्रभृति हजारों शहीदों और देशभक्तों का जन्मस्थान आज पाकिस्तान और बांगलादेश में है जो कि एक विदेश है।

सन् 1909 में आप बनारस आये। वहाँ स्कूली परीक्षा पास कर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ने लगे। आपको इतिहास और अर्थशास्त्र में विशेष रुचि थी। आपने बी0 ए0 की परीक्षा इन्हीं दोनों विषयों को लेकर पास की।

इधर सन् 1922 से असहयोग आन्दोलन की असफलता के बाद बंगाल के क्रान्तिकारी दल, अनुशीलन समिति ने बनारस में अपनी शाखा खोल दी थी। आप उसके संस्पर्श में आये और क्रान्तिकारी संगठन में कार्यशील हो गये। उन्हीं दिनों राजेन्द्र लाहिड़ी का सम्पर्क अनुशीलन के सतीश सिंह तथा मुझसे (शचीन्द्रनाथ बख्शी से) व अन्य क्रान्तिकारियों से हो गया था। शचीन्द्रनाथ सान्याल से भी आपका सम्पर्क हुआ। शचीन्द्रनाथ सान्याल के दल और यू0 पी0 की अनुशीलन समिति एक होकर 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' (भारतीय प्रजातन्त्र संस्था) के नाम से एक नई संस्था बनी, जिसमें राजेन्द्र लाहिड़ी शामिल हो गये।

वे कहा करते थे कि वर्तमान युग में अर्थशास्त्र योगशास्त्र है। जिसको अपने देश की आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक ज्ञान नहीं, उसे देश के विषय में बात करने का अधिकार नहीं। देशसेवकों को अर्थशास्त्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का पूर्ण ज्ञान होना परमावश्यक है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर उन्होंने अर्थशास्त्र का अच्छा अध्ययन किया और साथ-साथ यूरोप और भारत के इतिहास का भी गहन अध्ययन किया।

वे सुरुचिपूर्ण साहित्यसेवी भी थे। लाहिड़ी ने अंग्रेजी के मूर्धन्य साहित्यिकारों

तथा बंगला के रवीन्द्रनाथ, शरत्चन्द्र, बंकिमचन्द्र आदि के साहित्य का भी अध्ययन किया था। गिरफ्तारी के समय वे एम0ए0 के विद्यार्थी थे और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की बंगला साहित्य परिषद के मन्त्री थे।

वे सदैव सरल जीवन व्यतीत किया करते थे। आडम्बर से उन्हें बड़ी घृणा थी। वे सत्यवादी थे। हँसी-मजाक में भी झूठ बोलना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। वे प्रकृति से सरल, चिन्तनशील और मूलतः बुद्धिवादी थे। वे अच्छे खिलाड़ी भी थे। तैरना, ऊँचाई से कूदना, हॉकी आदि खेलों में उनकी खूब रुचि थी। मेरे द्वारा स्थापित 'जिमनास्टिक क्लब' तथा बनारस की 'सेण्ट्रल हेल्थ यूनियन' के वे सदस्य रहे तथा मेरे बनारस छोड़ने पर राजेन्द्र लाहिड़ी यूनियन के मन्त्री भी रहे।

जब शचीन्द्र सान्याल, जोगेश चटर्जी को बनारस केन्द्र से हटाकर कानपुर ले गये उस समय राजेन्द्र लाहिड़ी को बनारस केन्द्र की जिम्मेदारी और नेतृत्व सौंपा गया। क्रान्तिकारियों का यह बनारस केन्द्र उत्तर भारत में सबसे बड़ा केन्द्र था। बनारस के सुदृढ़ और अनुभवी क्रान्तिकारी युवक मन्मथनाथ गुप्त, कुन्दनलाल, अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद तथा विश्वविद्यालय की पूरी मण्डली में से किसी ने कभी भी राजेन्द्र लाहिड़ी का नेतृत्व अस्वीकार नहीं किया और उनके निर्देशानुसार काम करते रहे। शुरू-शुरू में लाहिड़ी ने क्रान्तिकारी कार्यों हेतु धन-संग्रह के लिए की जाने वाली डकैतियों में भाग नहीं लिया। यह सन् 1924 के अन्त तथा 1925 के प्रारम्भ की बात है, लेकिन जब इसी बात को लेकर कुछ चर्चा चली कि पार्टी के सदस्यों में कौन 'सैनिक' और कौन 'असैनिक' मनोवृत्ति का है, तो वह भी डकैतियों में शरीक होने लगे।

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि सन् 1925 के शुरू में शचीन्द्रनाथ सान्याल की गिरफ्तारी के बाद इस सूबे में रामप्रसाद बिस्मिल सबसे बड़े क्रान्तिकारी नेता थे और स्वतः दल का नेतृत्व उन्हीं के ऊपर आ पड़ा था लेकिन यह भी सत्य है कि संगठन की सारी बागडोर राजेन्द्र लाहिड़ी ने धीरे-धीरे अपने हाथ में ले ली थी और बिस्मिल ने कभी भी संगठनात्मक बातों या कार्यों में कोई दखल नहीं दिया। राजेन्द्र लाहिड़ी हमेशा दूर की सोचा करते थे। पार्टी के एक सदस्य को उन्होंने जबलपुर भेजा था और महाराष्ट्र में संगठन करने के लिए रामकृष्ण खत्री को भेजा, क्योंकि रामकृष्ण खत्री मराठी अच्छी जानते थे और बोलते थे।

काकोरी ट्रेन डकैती के बाद लाहिड़ी बंगाल चले गये थे--अस्त्र-शस्त्र व बम लाने और बम बनाना सीखने। वारण्ट निकलने के कुछ दिन बाद वह कलकत्ता के पास दक्षिणेश्वर में एक बम फैक्ट्री में अन्य नौजवानों के साथ पकड़े गये।

उस फैक्ट्री में बहुत से तैयार बम मौजूद थे और वे सब खतरनाक किस्म के थे। राजेन्द्र लाहिड़ी को उस केस में दस साल की सज़ा हुई, उसके बाद वह लखनऊ लाये गये और उन्हें काकोरी केस में भी शरीक किया गया।

राजेन्द्र लाहिड़ी में हास्य, करुणा तथा वीरता का विचित्र संगम था। मस्ती उनका जीवन और निर्भयता उनका संबल था। बड़ी से बड़ी विपत्तियों में भी उनकी स्वाभाविक मुस्कान में कुछ भी अन्तर आना असम्भव था।

राजनीतिक क्रान्ति के साथ-साथ वे सामाजिक तथा धार्मिक क्रान्ति के पोषक थे। धार्मिक रूढ़ियों तथा सामाजिक कुरीतियों के लाहिड़ी कट्टर विरोधी थे।

राजेन्द्र लाहिड़ी अपने तमाम मुकदमों में बड़े ही शान्त और निर्विकार रहे। उनके चेहरे पर एक स्वाभाविक मुस्कान के अतिरिक्त कभी भी कोई विमर्श का चिह्न दिखाई नहीं दिया।

सन् 1927 के अप्रैल महीने में उन्हें जब फाँसी की सज़ा सुनाई गई, उस क्षण उनके चेहरे पर कोई शिकन भी नहीं आई। फाँसीघर से लिखी हुई उनकी चिट्ठियों से राजेन्द्र लाहिड़ी की स्वाभाविक गम्भीरता, विद्वत्ता, निर्भीकता तथा उत्कट देश-प्रेम का परिचय मिलता है।

राजेन्द्र लाहिड़ी अपने साथियों से दो दिन पहले ही 17 दिसम्बर को सुबह गोंडा में फाँसी पर चढ़ा दिये गये और वे बड़ी प्रसन्नता के साथ हँसते हुए फाँसी पर चढ़ गये। फाँसी के बाद भी उनके चेहरे पर अद्‌भुत शान्ति और तेज छाया रहा।

राजेन्द्र लाहिड़ी की इच्छा थी कि हिन्दू रीति के अनुसार उनके शव का दाह-संस्कार हो, जिसे गोंडा निवासियों ने बड़ी खूबी से निभाया।

आज देश ने राजेन्द्र लाहिड़ी जैसे क्रान्तिकारियों को भुला दिया है, जो देशभक्ति और त्याग के आदर्श थे। आजादी के बाद के वर्षों में क्रान्तिकारियों को भुलाकर हमारे नेताओं ने देशघात ही किया है, उसका परिणाम अच्छा नहीं निकला। देश का आदमी आज त्याग, बलिदान, ईमानदारी, सच्चाई और देश के लिए जीने-मरने की प्रेरणा नहीं पा रहा। सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचार के अनेक कारणों में से यह कारण प्रमुख है कि आज आदमी सोच नहीं पा रहा कि वह तकलीफ उठाकर और अपने घर-परिवार के स्वार्थों को ठुकरा कर भी देश की भलाई, देश हित का रास्ता क्यों अपनाये?



शहीद राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी

काकोरी काण्ड के बाद आप कलकत्ता चले गए तथा वहाँ बम बनाने का काम सीखने लगे। कलकत्ता के पास दक्षिणेश्वर में एक बम बनाने की फैक्ट्री में आप पकड़े गए जिसमें आपको दस वर्ष की सज़ा मिली, तत्पश्चात् लखनऊ लाये गए एवं काकोरी षड्यन्त्र केस में आपको फाँसी की सज़ा मिली। फाँसी हेतु निर्धारित तिथि 19 दिसम्बर, सन् 1927 से दो दिन पूर्व ही 17 दिसम्बर, सन् 1927 को गोण्डा जेल में आपको फाँसी दी गई, क्योंकि अंग्रेजों को डर था कि वे जेल से निकल भागने का षड्यन्त्र रच रहे हैं।

शहीद शिरोमणि रामप्रसाद बिस्मिल

शाहजहाँपुर में ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष 11, सम्वत् 1954 विक्रमी तदनुसार 11 जून, 1897 को रामप्रसाद का जन्म हुआ। आपके पिता मुरलीधर बचपन में ही अपने पिता के साथ सपरिवार ग्वालियर से शाहजहाँपुर आकर बस गए थे और अन्त तक यही स्थान हमारे चरित्र नायक का लीला क्षेत्र रहा था। उर्दू की शिक्षा पाने के बाद, जब आप शाहजहाँपुर के अंग्रेजी स्कूल में पढ़ते थे तब आपका जीवन आम विद्यार्थियों जैसा ही था। बचपन से ही रामप्रसाद को कसरत करने का शौक था और शरीर से वे यथेष्ट बलशाली थे। शाहजहाँपुर में एक साधारण-सी नदी है खन्नोत जो वर्षाकाल में बढ़ जाती है तथा उसकी लहरें विकट रूप धारण कर लेती हैं। रामप्रसाद उसी समय उस नदी में तैरा करते थे। अवसर मिलने पर वे उसी नदी किनारे बैठे रहते थे व कसरत भी किया करते थे।

विद्यार्थी जीवन में ही रामप्रसाद स्वामी श्री सोमदेवजी सरस्वती के सम्पर्क में आये और यहीं से आपके जीवन में परिवर्तन आया। स्वामी श्री सोमदेव के सान्निध्य ने ही रामप्रसाद के मन में क्रान्ति के बीज को प्रस्फुटित किया और वे देशभक्त बन गए।

सन् 1915 के उत्तर भारत मे विराट क्रान्ति आयोजन के विफल हो जाने के बाद कुछ क्रान्तिकारी श्री गेंदालाल दीक्षित के नेतृत्व में क्रान्तिकारी कार्यकलाप जारी रखे थे। रामप्रसाद भी उनमें जा मिले और मुख्य कार्यकर्ताओं में शामिल हो गए। श्री गेंदालाल दीक्षित का एक ही उद्देश्य था कि भारत को किसी भी प्रकार विदेशियों से मुक्त कराना है, चाहे इस हेतु अस्त्र-शस्त्र का भी प्रयोग क्यों न करना पड़े। दीक्षितजी का यह प्रयास गुप्त न रह सका तथा ब्रिटिश हुक्मरानों तक सूचना पहुँच गई और वे गिरफ्तार कर लिये गए।

अब अपने नेता को जेल से छुड़ाने की योजना बनने लगी। मात्र 19 वर्ष

की अवस्था में श्री गेंदालाल दीक्षित को ग्वालियर जेल से छुड़ाने के लिए अर्थ संग्रह के उद्देश्य से रामप्रसाद ने पहली डकैती डाली थी। इस पहली ही डकैती में रामप्रसाद ने अपनी दृढ़ता और साहस का परिचय देकर यह प्रमाणित कर दिया था कि वह स्वभाव से ही क्रान्तिकारियों के नेता हैं। इस डकैती में रामप्रसाद को चोट भी आ गयी थी। इसका दिलचस्प वर्णन अपने निराले ढंग से उन्होंने अपनी आत्मकथा में किया है। श्री गेंदालाल दीक्षित को छुड़ाने की योजना में सम्मिलित नौजवान परिपक्व न होने के कारण यह योजना गुप्त न रह सकी और भेद खुल गया। कुछ लोग गिरफ्तार हो गए। रामप्रसाद फरार हो गए। गिरफ्तार लोगों पर मैनपुरी षडयन्त्र केस चला। यह सन् 1918 का समय था तथा उस समय प्रथम विश्वयुद्ध चल रहा था।

पहला विश्वयुद्ध समाप्त होने के पश्चात अंग्रेजों ने कुछ राजबन्दियों को रिहा कर दिया तथा रामप्रसाद ने भी शाही ऐलान अखबारों में पढ़ा कि उनके ऊपर से वारण्ट हटा लिया गया है और आप शाहजहाँपुर लौट आए। शाहजहाँपुर लौटकर रामप्रसाद के सामने रोज़ी-रोटी की समस्या थी अतः उन्होंने सिल्क का कारोबार प्रारम्भ किया। सिल्क का कारखाना खोला और कुछ ही दिनों में अच्छा-खासा व्यवसाय बना लिया।

असहयोग आन्दोलन के असफल होने के बाद बनारस में बंगाल के क्रान्तिकारियों ने पुनः संगठन प्रारम्भ कर दिया था। बनारस षडयन्त्र केस में आजन्म कारावास की सज़ा प्राप्त तथा असहयोग आन्दोलन के दिनों में रिहा हुए तथा सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस के दाहिने हाथ, शचीन्द्रनाथ सान्याल के नेतृत्व में भी एक क्रान्तिकारी दल संगठित हुआ था। बड़े पैमाने पर तथा सूबे भर में क्रान्तिकारी संगठन के प्रचार-प्रसार के साथ सन् 1923 के प्रारम्भ में शचीन्द्रनाथ सान्याल ने रामप्रसाद बिस्मिल से सम्पर्क साधा और क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित होने का आग्रह किया। रामप्रसाद ने व्यापार को समेटने के लिए एक साल का समय माँगा। सन् 1924 में बंगाल का क्रान्तिकारी दल और शचीन्द्रनाथ सान्याल का दल एक होकर 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' अर्थात हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र समिति की स्थापना हुई। इसके बाद रामप्रसाद इस संस्था में सम्मिलित हुए और मुख्य नेता के रूप में कार्य करते रहे।

अपने संगठन को मजबूत बनाने और उसकी शाखाएँ खोलने का कार्य तेजी से चलने लगा। क्रान्तिकारी दल की आवश्यकताओं के अनुसार अर्थ-संग्रह के लिए रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में कई डकैतियाँ डाली गयीं। इन डकैतियों से

धन तो मिला, किन्तु कुछ कठिनाइयाँ भी सामने आयीं। विचार-विमर्श कर यह तय किया गया कि किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति न लूटी जाए। इन डकैतियों के क्रम में काकोरी ट्रेन डकैती अन्तिम थी। सन् 1925 के 9 अगस्त को काकोरी काण्ड को दस क्रान्तिकारियों ने अंजाम दिया। ये दस क्रान्तिकारी थे—रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खाँ, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, शचीन्द्रनाथ बख्शी, चन्द्रशेखर आजाद, मुकुन्दी लाल, मन्मथनाथ गुप्त, बनवारी लाल, केशव चक्रवर्ती और मुरारी लाल। इनमें केशव चक्रवर्ती तथा मुरारी लाल कभी पकड़े नहीं जा सके। सन् 1931 के 27 फरवरी को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में चन्द्रशेखर आजाद ने पुलिस संघर्ष में वीरगति पाई। काकोरी काण्ड के कुछ दिनों बाद आम गिरफ्तारियाँ हुईं जिसमें रामप्रसाद बिस्मिल भी पकड़े गए और स्पेशल जज ने उन्हें फाँसी की सज़ा दी।

सज़ा होने के बाद फाँसीघर से उन्होंने बहुतेरी कोशिश की कि चारों फाँसीवालों की सज़ा बदलकर काला पानी कर दी जाए। उन्हें ब्रिटिश न्याय से कुछ आशा और भरोसा था, जो लगभग अन्तिम समय तक रही, लेकिन कोई फल नहीं हुआ। फाँसी की सज़ा बरकरार रही और नियत समय पर चारों फाँसी पर चढ़ा दिए गये।

काकोरी षडयन्त्र का मुकदमा 19 महीनों तक चला। काकोरी के अभियुक्तों के बचाव में मोतीलाल नेहरू ने एक डिफेन्स कमेटी बनायी थी जिसमें जवाहरलाल नेहरू, पं0 गोबिन्दबल्लभ पन्त, चन्द्रभानु गुप्त, मोहनलाल सक्सेना, कृपाशंकर हजेला, बी.के. चौधरी आदि थे।

फाँसी से तीन दिन पहले आपने दिन-रात लिखकर अपनी आत्मकथा बाहर भेजी जो प्रकाशित भी हुई। इस आत्मकथा में आपने अत्यधिक कड़ुआहट के साथ ब्रिटिश न्याय-बोध (सेंस ऑफ जस्टिस) की खिल्ली उड़ाई है और लिखा है कि बदले की भावना से अंग्रेज उन्हें फाँसी दे रहे हैं। रामप्रसाद लगभग आठ माह से अधिक समय तक काल कोठरी में रहे। इस अवधि में भी वे कसरत व पूजा-पाठ इत्यादि करते रहे। इसी से उनके साहस का परिचय मिलता है। मरना तो है ही, तो फिर मौत से क्या डरना।

पं0 रामप्रसाद बिस्मिल को 19 दिसम्बर, सन 1927 को गोरखपुर जेल में फाँसी दे दी गयी। फाँसी से पहले उन्होंने 'वन्दे मातरम्' और फिर 'भारत माता की जय' का घोष किया और फाँसी के तख्ते पर चढ़ गये। फाँसी के तख्ते पर खड़े होकर उन्होंने कहा—मैं अंग्रेजी साम्राज्य का नाश चाहता हूँ। और हमेशा-हमेशा के लिए वे इस दुनिया से विदा हो गये।



शहीद रामप्रसाद बिस्मिल

जिन्हें 19 दिसम्बर, सन् 1927 को गोरखपुर जेल में फाँसी दी गई। फाँसी से पहले रामप्रसाद बिस्मिल ने 'वन्दे मारतरम्' व 'भारत माता की जय' का उद्घोष किया और फाँसी के तख्ते पर खड़े होकर कहा–I wish the down fall of British empire.

अब न पिछले वलवले हैं और न अरमानों की भीड़,
एक मिट जाने की हसरत बस दिले 'बिस्मिल' में है।

रामप्रसाद बिस्मिल के सबसे बड़े गुण थे—उनकी बहादुरी, मनुष्यों पर उनका सहज नेतृत्व, सेनापति के स्वाभाविक गुण और हृदय ज्वालामुखी-सा जिससे उनके इर्द-गिर्द के लोग उनसे हमेशा डरा करते थे, उनके सामने झुक जाते थे। सफाई के वकील श्री चन्द्रभानु गुप्त व मोहन लाल सक्सेना के शब्दों में ब्रिटिश राज में रामप्रसाद फाँसी पर चढ़ने जा रहें हैं, अगर दो ढाई सौ साल पहले रामप्रसाद पैदा होते तो He could have carbed out a kingdom for himself, अर्थात रामप्रसाद अपने लिए एक राज्य का निर्माण कर राजा बनकर राज कर सकते थे।

पं॰ रामप्रसाद बिस्मिल की सबसे प्रिय नज़्म थी—'सर फरोशी की तमन्ना...' जो आज भी नया उत्साह संचार करने में सक्षम है।

सर फरोशी की तमन्ना

सर फ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है ज़ोर कितना बाजुए कातिल में है।
रहबरे राहे मुहब्बत रह न जाना राह में,
लज़्ज़ते सहरानवर्दी दूरिये मंजिल में है।
वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमाँ,
हम अभी से क्या बताएँ क्या हमारे दिल में है।
अब न अगले वलवले हैं औ' न अरमानों की भीड़,
एक मिट जाने की हसरत अब दिले 'बिस्मिल' में है।
आज मकतल में वो कातिल कह रहा है बार बार,
क्या तमन्नायें शहादत भी किसी के दिल में है।
ऐ शहीदे मुल्क मिल्लत! मैं तेरे ऊपर निसार,
अब तेरी हिम्मत का चर्चा गैर की महफिल में है।

पं॰ रामप्रसाद बिस्मिल की अन्य लोकप्रिय रचनाएं—

मालिक तेरी रज़ा रहे और तू ही तू रहे,
बाकी न मैं रहूँ न मेरी आरजू रहे।
जब तक कि तन में जान रगों में लहू रहे,
तेरा ही ज़िक्र या कि तेरी ही जुस्तजू रहे।
मरते 'बिस्मिल' 'रोशन' 'लहरी' 'अशफ़ाक' अत्याचार से।
होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

आज अहिंसावादी नहीं, सुभाष सरीखा कठोर नेता चाहिए अहिंसा का प्रचार अहितकर, आज़ादी का श्रेय सिर्फ कांग्रेस को नहीं।

स्वर्गीय श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी ने यह लेख सन् 1964 के प्रारम्भ में लिखा था जब पड़ोसी देश चीन व पाकिस्तान से युद्ध जैसी स्थिति थी। उनका कहना था कि आज़ादी के बाद 17 वर्षों तक अहिंसा का प्रचार और 'अहिंसा से ही मुल्क आज़ाद हुआ' इस झूठे प्रचार के बाद, आज ऐसा समय आ गया है जब अहिंसा का प्रचार करना देशद्रोह समझा जाने लग गया है। आज जनता समझने लगी है कि पाकिस्तान और विस्तारवादी चीन हमारा दुश्मन है। इससे मुकाबला करना अहिंसा से कभी सम्भव नहीं हो सकता। उसके लिए मिलिटरी (सैन्य शक्ति) बढ़ानी होगी। पलटन तैयार करनी होगी और जिसके लिए अहिंसावादी नहीं बल्कि विद्रोही सुभाष जैसा क्रान्तिकारी, शहीदों जैसा त्यागी और बलिदानी तथा कठोर नेता चाहिए। आज देश की यही माँग है। सन् 1964 में उनके द्वारा लिखे गए इस लेख के 42 वर्षों बाद भारत का राजनैतिक परिदृश्य अवश्य कुछ बदल गया है किन्तु भारत को शक्तिशाली बनाने के लिए क्या देश को ऐसा नेता मिल सका? क्या उनके विचार आज की परिस्थितियों में भी प्रासंगिक नहीं?

श्री सुभाषचन्द्र बोस का नाम मैंने सबसे पहले सुना सन् 1921 की जुलाई में, जब वह विलायत से आइ. सी. एस. पास करके लौटे। अखबारों में मैंने पढ़ा कि उन्होंने आई. सी. एस. से इस्तीफा भी दे दिया है और कांग्रेस में शरीक हो रहे हैं। अखबारों में यह भी आया कि आई. सी. एस. के कम्पीटीटिव परीक्षा में उन्हें चौथा स्थान मिला था और उन्होंने अप्रैल में ही वहाँ इस्तीफा दे दिया है। अंग्रेज सेक्रेटरी-ऑफ-स्टेट फॉर इण्डिया के समझाने-बुझाने पर भी वह नहीं माने हैं। इससे पहले किसी ने आई. सी. एस. से इस्तीफा नहीं दिया था। इससे उनका नाम होना स्वाभाविक था। आई. सी. एस. की परीक्षा सरकारी ओहदे के

लिए सबसे बड़ी परीक्षा समझी जाती थी। ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट के पद पर उनकी नियुक्ति भी हो गयी थी और इस प्राइज़ पोस्ट से इस्तीफा देना बहुत बड़ा त्याग समझा गया और सुभाष बाबू की जीवनी लोगों के सामने आई।

मालूम हुआ सुभाष बाबू उड़ीसा के कटक शहर में 30 जनवरी सन् 1897 में पैदा हुए थे और सन् 1916 फरवरी में प्रेसिडेंसी कॉलेज कलकत्ता से वह निकाले गये थे जब वह बी.ए. में पढ़ते थे। उनके उपर यह आरोप लगाया गया था कि उनके नेतृत्व में कुछ लड़कों ने क्लास के बरामदे में एक अंग्रेज प्रोफेसर को पीटा था। इस कालेज में सुभाष बड़े प्रतिभावान विद्यार्थी थे, लेकिन अंग्रेज प्रोफेसरों से इनकी झड़प हो जाया करती थी, जब कोई अंग्रेज प्रोफेसर हिन्दुस्तान के या हिन्दुस्तानियों की शान के खिलाफ कुछ रिमार्क कर दिया करते थे। कालेज के बरामदे में जब प्रोफेसर पीटे गये वहाँ सुभाष बोस मौजूद थे और उनके सामने प्रोफेसर की पिटाई हुई थी। इस काम में उनका नेतृत्व मान लिया गया था जिसे उन्होंने अस्वीकार नहीं किया और माफी भी नहीं माँगी एवं कॉलेज से निकाल दिये गए।

सन् 1917 की जुलाई में वे कलकत्ता विश्वविद्यालय में फिर से भर्ती हुए और 1919 में फिलॉसफी में फर्स्ट क्लास ऑनर्स के साथ बी.ए. पास किया। विश्वविद्यालय में भी वह विद्यर्थियों के नेता थे और इनके पिता ने इन्हें आई. सी.एस. परीक्षा में बैठने के लिए विलायत भेज दिया। इंग्लैण्ड जाकर आप कैम्ब्रिज में स्टडी करते रहे और इंग्लैण्ड में सिर्फ आठ महीने पढ़ने के बाद सिविल सर्विसेज़ की कम्पिटीटिव परीक्षा पास की और चौथा स्थान प्राप्त किया। परीक्षा पास करने के बाद उन्होंने अपने भाई शरत्चन्द्र बोस को लिखा—यह सड़ी-गली नौकरी मैं नहीं करूँगा और देश की सेवा में अपना जीवन उत्सर्ग करूँगा। शरत् बोस के मना करने और समझाने पर भी उन्होंने अप्रैल 1921 में इंग्लैण्ड में रहते हुए आई. सी.एस. से इस्तीफा दे दिया।

उन दिनों अमृतसर के जलियाँवाला बाग में ब्रिटिश मिलिट्री द्वारा निहत्थे व्यक्तियों का कत्लेआम किया जा चुका था और महात्मा गाँधी राजनैतिक मैदान में आ चुके थे। जब सुभाष बाबू सन् 1921 की जुलाई में जहाज से उतरे, उस वक्त गाँधी जी एक साल के अन्दर हिन्दुस्तान को आज़ादी दिलाने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। सुभाष बाबू गाँधीजी से आकर मिले लेकिन गाँधीजी का अहिंसावाद उन्हें जँचा नहीं और वह बंगाल लौटकर देशबन्धु चितरंजन दास के साथ काम करने लगे।

10 दिसम्बर को सुभाष बोस को प्रथम बार 6 महीने की सज़ा मिली। देशबन्धु

चितरंजन दास को भी उन दिनों सज़ा मिली थी और दोनों जेल में एक साथ रहे। धीरे-धीरे सुभाष बाबू देशबन्धु दास को गुरु मानने लग गये। सन् 1922 में गाँधीजी द्वारा नॉन-कोऑपोरेशन मूवमेण्ट को स्थगित करने पर ये दोनों बहुत नाराज हुए। सन् 1922 दिसम्बर में सी.आर. दास जब गया कांग्रेस के प्रेसीडेण्ट हुए थे और जिस कांग्रेस में काउंसीलैटरी का प्रस्ताव पास कराने की कोशिश की थी उन दिनों बोस सी.आर. दास के सेक्रेटरी और सहकारी थे। गया कांग्रेस में काउंसीलेटरी का प्रस्ताव पास नहीं हुआ बल्कि वह हुआ सन् 1923 के दिल्ली के कांग्रेस स्पेशल सेशन में।

दिल्ली स्पेशल कांग्रेस में मैंने सुभाषचन्द्र बोस को पहले पहल देखा। वह बड़े उत्साही युवक थे और दास बाबू के साथ हमेशा रहा करते थे।

सन् 1923 में स्वराज्य पार्टी के काउंसीलैटरी के प्रोग्राम में दास बाबू के साथ सुभाष बोस बहुत सक्रिय रहे और सन् 1924 के शुरू में कलकत्ता कॉरपोरेशन के ऊपर स्वराज्यवादियों का नियन्त्रण होने पर सी.आर. दास कलकत्ता के मेयर और सुभाष बोस कलकत्ता कॉरपोरेशन के चीफ एक्ज़ीक्यूटिव ऑफिसर बनाये गये। इस पद पर सुभाष बोस ने बहुत काम किया। अनेक रचनात्मक काम किये और इन कामों के साथ-साथ काफी नाम भी पैदा किया। उन दिनों मुझे याद है, कलकत्ता का 'स्टेट्समैन' जो अंग्रेजी व्यवस्था का मुख-पत्र था, सुभाष बाबू के खिलाफ सम्पादकीय लेख लिखता था। सन् 1924 अक्टूबर में वह नज़रबन्द कर लिये गए जब बंगाल ऑरडीनेंस में बंगाल के क्रान्तिकारियों की आम गिरफ्तारी हुई। सुभाष बोस अलीपुर सेंट्रल जेल में बैठकर कलकत्ता कॉरपोरेशन के चीफ एक्ज़ीक्यूटिव ऑफिसर का काम करते रहे। यह बात भी सरकार को बहुत खल गयी और वह बर्मा के सुदूर माण्डले जेल में अन्य 7 क्रान्तिकारियों के साथ भेज दिये गए।

सन् 1925 में देशबन्धु दास की अकस्मात मृत्यु से सुभाष बाबू को बड़ा धक्का पहुँचा। चूँकि सुभाष बाबू उन्हें गुरु मानते थे इसलिए उनकी बड़ी इज्जत करते थे और उनकी मृत्यु के बाद सुभाष बोस ने महसूस किया कि बंगाल राजनीति के चौराहे पर अब वे एकाकी रह गये हैं।

सन् 1926 में आप बंगाल लेजिसलेटिव में चुने गए, लेकिन सरकार ने तब भी आपको नहीं छोड़ा। सन् 1927 में आपके बहुत बीमार पड़ जाने पर मजबूर होकर सरकार ने उन्हें छोड़ दिया।

आपके छूटने के बाद आपने देखा कि कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता डॉमीनियन

स्टेट्स (औपनिवेशिक स्वराज्य) लेकर ही खुश रहने की बात सोच रहे हैं तब आपने जवाहरलाल नेहरू के साथ 'इण्डिया इण्डिपेण्डेंस लीग' कायम करके मुकम्मिल आज़ादी का प्रचार करते रहे।

सन् 1928 में आपने कलकत्ता कांग्रेस में मुकम्मिल आज़ादी का प्रस्ताव पास कराने की कोशिश की, लेकिन कामयाब नहीं रहे। उस कांग्रेस के मौके पर आपने जो वालेण्टियर संगठन किया था वह अपूर्व रहा और उसके 'जनरल' के यूनिफार्म में आप खूब फबते थे। उस जमाने का आपका 'जनरल' के फोटो का ही प्रचार रहा जब आपने आज़ाद हिन्द फौज तथा सिंगापुर में आज़ाद हिन्द सरकार कायम की।

सन् 1929 में लाहौर कांग्रेस में मुकम्मिल आज़ादी का प्रस्ताव पास होने के बाद 23 जनवरी को कलकत्ता में एक इण्डिपेण्डेंस जुलूस का नेतृत्व करते समय आप पकड़ लिये गए और जब 8 महीने बाद 25 सितम्बर को छोड़े गए तब आप कलकत्ता के मेयर बन चुके थे। उसके कुछ दिन बाद आप ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के चेयरमैन बनाये गए। उसके बाद 26 जनवरी को 'इण्डिपेंडेंट डे' के डिमॉन्सट्रेशन (स्वाधीनता दिवस के प्रदर्शन) करने पर आप पकड़ लिये गए। लेकिन थोड़े दिन बाद ही गाँधी-इरविन पैक्ट हुआ, जिसके मुताबिक आप अन्य कांग्रेसियों के साथ छोड़ दिये गए।

सेकेण्ड राउण्ड टेबिल कॉनफ्रेन्स से महात्मा गाँधी दिसम्बर 31 को लौट आये। वह इंग्लैण्ड से निराश होकर लौटे थे और उनके लौटने पर फिर आन्दोलन छिड़ा और सुभाष बाबू 2 जनवरी सन् 1932 को फिर पकड़ लिये गये। सन् 1933 की फरवरी में उनके बहुत बीमार पड़ने पर वह छोड़ दिये गये और वह सीधे वियेना के सैनिटोरियम में जाकर भर्ती हुए। उनकी हालत बहुत खराब थी। लम्बे इलाज के बाद वे अच्छे हुए। इधर सन् 1932 की 8 मई को गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन (सिविल डिसओबिडियेन्स मूवमेन्ट) स्थगित कर दिया। गाँधीजी के आन्दोलन स्थगित करने से सुभाष बोस बहुत नाराज़ हुए और उन्होंने विट्ठल भाई पटेल के साथ जो उस वक्त वियेना में थे, एक संयुक्त वक्तव्य निकाला। उस वक्तव्य से और वियेना की प्रेस कॉनफ्रेन्स से साबित हो गया था कि सुभाष बोस आन्दोलन को स्थगित करने के बहुत खिलाफ थे।

सेनीटोरियम से डिस्चार्ज होते ही सुभाष बोस बर्लिन, रोम, प्रॉग, वारसॉ, इस्ताम्बोल, बेलग्रेड और बुखारेस्ट—यूरोप की इन राजधानियों में गये और भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता की आवश्यकता के लिए प्रचार किया। उन दिनों सुभाष बोस

ने भारत के पक्ष में संसार के जनमत को जगाने के लिये बड़ा काम किया।

वह बहुत लिखते भी रहे, जहाँ-जहाँ हिन्दुस्तानी विद्यार्थी थे उनमें प्रचार करते रहे और विभिन्न राष्ट्रों के कर्णधारों से और राजनैतिक नेताओं से भी मिलते रहे। सुभाष बोस कई बार डाक्टर बेनस से मिले, डी बैलेरा से भी मिले। उन दिनों फ्रांस के मनीषी रोमा रोला ने सुभाष बोस को बहुत उत्साहित किया और सुभाष बोस सन् 1936 में जर्मनी के हिटलर, रिवन्ट्राप तथा नाज़ी पार्टी के अन्य नेताओं से भी मिले। सुभाष बोस ने उनसे साफ पूछा कि वे कब इंग्लैण्ड के ऊपर हमला करेंगे ताकि उस मौके पर हम भी साथ-साथ अंग्रेजों के खिलाफ हथियार उठा सकें। उन्होंने उन लोगों से यह भी कहा—अंग्रेज हमारा ट्रेडिशनल दुश्मन है, आप लोग उनसे लड़ें या न लड़ें, हमें मदद दें या न दें, हमें तो अंग्रेजों से लड़ना ही है।

इन्हीं दिनों यूरोप में रहते हुए सुभाष बाबू की पुस्तक 'दी इंडियन स्ट्रगल' विदेश में ही प्रकाशित हुई। सन् 1936 के मार्च महीने में उन्होंने ऐलान किया कि वह भारत लौट रहे हैं और साथ-साथ भारत सरकार ने भी ऐलान किया कि हिन्दुस्तान लौटने पर वे फौरन पकड़ लिये जायेंगे। इससे पहले 1934 के आखिर में सुभाष बोस एक बार हवाई जहाज से भारत आये थे जब उनके पिता रायबहादुर जानकीनाथ बोस बहुत बीमार थे, लेकिन सुभाष बोस की पिता से मुलाकात नहीं हुई क्योंकि उनके पहुँचने से पहले ही उनके पिता की मृत्यु हो चुकी थी और फिर वे यूरोप लौट गये थे।

सन् 1936 में 8 अप्रैल को बम्बई में जहाज से उतरते ही सुभाष बोस पकड़ लिये गए। उन्हें उस वक्त तक ब्रिटिश सरकार बहुत ही खतरनाक समझती थी। यूरोप की उनकी गतिविधियों को क्रान्तिकारी विद्रोही का काम समझा जाता था। उनसे ब्रिटिश सरकार बहुत घबराने लगी थी।

सन् 1937 के मार्च महीने में वह छोड़े गये और अक्टूबर तक हिमालय के पहाड़ों पर रहे। सन् 1937 में नये कानून के अनुसार पहले चुनाव में सात सूबों में कांग्रेस बहुमत में आई और सात सूबों में कांग्रेस मिनिस्ट्री बनी और महात्मा गाँधी के आग्रह पर सुभाष बोस ने सन् 1938 के लिए कांग्रेस सभापति (अध्यक्ष) बनने की स्वीकृति दी और कुछ दिनों के लिए वह यूरोप और इंग्लैण्ड घूमने चले गये। इंग्लैण्ड में वह मिस्टर एटली, मिस्टर वेबिन तथा सर स्टैफोर्ड क्रीपस से मिले, जिन लोगों ने उनका बड़ा स्वागत किया। चन्द हफ्तों बाद वह लौटकर आये और सन् 1938 में कांग्रेस का सभापतित्व सम्भाला।

सन् 1939 में गाँधीजी के विरोध करने पर भी वह सभापति फिर से चुने

गये, लेकिन गाँधीवादी कांग्रेसी नेताओं ने उनके लिए सभापति बने रहना असम्भव कर दिया और वह कांग्रेस से इस्तीफा देकर बाहर आए और कभी फिर कांग्रेस में शरीक नहीं हुए। उन्होंने 'फारवार्ड ब्लॉक' की स्थापना की और सारे भारत का दौरा करके इस नयी पार्टी का संगठन किया।

कांग्रेस से उनका जो विरोध था और जिस विरोध के कारण उन्हें कांग्रेस से इस्तीफा देना पड़ा था उसका कारण था कि कांग्रेस का कोई भी नेता यूरोप की परिस्थितियों को ठीक से नहीं समझ पाता था। कई साल यूरोप में बिताने पर और वहाँ के राष्ट्र-नेताओं से मिलने-जुलने से तथा वहाँ की राजनैतिक परिस्थितियों का अच्छी तरह अध्ययन करने से सुभाष बोस को मालूम हो गया था कि विश्वयुद्ध छिड़ने ही वाला है। वह चाहते थे कि युद्ध शुरू होने पर भारत में भी ब्रिटिश विरोधी जबरदस्त मोर्चा कायम किया जाए और उसकी तैयारी के लिए ब्रिटिश सरकार को 6 महीने का अल्टीमेटम देना चाहते थे। इतनी जल्दी 6 महीने का अल्टीमेटम देकर आन्दोलन शुरू करने के लिए कांग्रेस नेता तैयार नहीं थे। अल्टीमेटम देकर पैरलल गवर्नमेण्ट समानान्तर सरकार बनाने से गाँधीजी समझते थे कि जबरदस्त हिंसा होगी और उस हिंसा के भय से गाँधीजी उस प्रोग्राम के सख्त खिलाफ थे। सात सूबों में कांग्रेस के नेताओं के अन्दर, मिनिस्ट्री में रहने के कारण अधिकार की और पद की लालसा बढ़ गई थी। वे लोग इस्तीफा देकर आन्दोलन को जल्दी बुलाने के लिए तैयार नहीं थे—उनकी मनोवृत्ति कुछ ऐसी ही हो गयी थी, उनके दृष्टिकोण से कुछ ऐसा लगता था जैसे उनके व्यक्तिगत निगाहों में उनके लिए तो स्वराज्य हो ही गया था। ऐसी परिस्थिति में सुभाष बाबू कांग्रेस को अपने साथ ले जा नहीं पाए और उनका फारवर्ड ब्लॉक उतनी सफलता प्राप्त नहीं कर सका जैसी उन्हें उम्मीद थी। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि 1939 के त्रिपुरी कांग्रेस में कांग्रेस-सोशलिस्ट पार्टी जो कि एक वाम. पंथी पार्टी समझी जाती थी, ने सुभाष बाबू का बिलकुल साथ नहीं दिया और गाँधीवादी दक्षिणपंथियों से सम्पूर्ण रूप से मिल गया। कांग्रेसी शोसलिस्टों का साथ सुभाष बोस को मिलने से भारत का इतिहास कुछ और ही बनता। मेरी अपनी समझ और जानकारी से मुझे मालूम है कि इसके लिए जयप्रकाश नारायण सबसे ज्यादा जिम्मेदार हैं। यह हमारे देश की बहुत बड़ी ट्रेजडी है कि जयप्रकाश नारायण जैसा एबनॉरमल आदमी भी हमारे यहाँ राजनीतिक नेता माना जाता है।

आखिरकार यूरोप में लड़ाई छिड़ ही गयी और सुभाष बाबू की आत्मा बहुत दुःखी हुई यह देखकर कि लड़ाई का फायदा उठाकर हिन्दुस्तान एक बहुत बड़ा

आज़ादी का मोर्चा कायम नहीं कर सका। सुभाष बोस लेफ्टिस्ट आइडियोलोजी के प्रतीक बने रहे और वामपंथी जन-आन्दोलन का नेतृत्व करते रहे और 2 जुलाई 1940 को कलकत्ता में पकड़ लिये गए। जेल में उन्होंने यह तय किया कि उन्हें भारत छोड़कर विदेश जाना है और युद्ध से फायदा उठाना है। जेल में सड़ने से–टिल दी ड्यूरेशन ऑफ वार–जेल में पड़े रहने से कोई लाभ नहीं। उनका यह विश्वास दिनोंदिन बढ़ता रहा और उन्होंने सरकार को लिख दिया–सरकार ने मुझे जबरदस्ती पकड़ा है और मुझे जबरदस्ती जेल में रखना चाहती है–बाई ब्रूट फोर्स। उत्तर में मैं कहता हूँ कि मुझे छोड़ दो वरना मैं जिन्दा रहने से इन्कार करूँगा और मुझे यह डिसाइड करना है कि मैं जिन्दा रहना या मरना पसन्द करूँगा। इस न्याय के खिलाफ मैं आमरण अनशन करूँगा जो अनशन 29 नवम्बर 1940 से शुरू होगा। पहले के अनशनों में जैसा मैं पानी और नमक लेता था वैसे ही मैं सिर्फ पानी पियूँगा कभी-कभी थोड़े नमक के साथ। लेकिन अगर मैं जरूरत समझूँगा तो आगे चलकर वह भी त्याग दूँगा।

सरकार ने उन्हें फोर्स फीडिंग की चेष्टा की-और उनके रेज़िस्ट करने पर सरकार ने उन्हें अनशन के 6 दिन बाद रिहा कर दिया। घर जाकर शान्ति के साथ अपनी तन्दुरुस्ती सुधारने लगे और किसी से मिलना-जुलना बन्द कर दिया। 29 दिसम्बर 1940 को सुभाष बोस ने बड़े लाट को एक पत्र लिखकर देश के शासक वर्ग के अत्याचारों के खिलाफ विशेषकर बंगाल की परिस्थिति पर एक कड़ा विरोध-पत्र भेजा। उन दिनों सुभाष बाबू किसी से मिलते नहीं थे और दो-चार जो निकट मित्र उनसे मिले थे, उन्होंने देखा था, उन्होंने दाढ़ी-मूछँ रख ली हैं। 26 जनवरी 1941 को सीडीशन के लिए (राजद्रोह के) मुकदमे की तारीख थी। उस तारीख को पता लगा कि सुभाष बाबू गायब हो गये हैं। बहुत ढूँढ़ने पर भी उनका कोई पता नहीं चला। सिर्फ इतना पता चला कि 17 जनवरी कई प्रहर रात रहते एक मोटर सुभाष बोस के घर के दरवाज़े के पास रुकी थी। जब सारी दुनिया सो रही थी और सड़क पर कोई जन-मानव दिखाई नहीं पड़ रहा था सुभाष बाबू के घर से एक मुसलमान मजहबी प्रचारक मौलवी जियाऊद्दीन निकल आये थे और यह कार कलकत्ता से 210 मील चलकर गोमो स्टेशन पर रुकी थी और सुभाष बोस मौलवी जियाउद्दीन के रूप में पेशावर के लिए ट्रेन पर सवार हो गये।

पेशावर से पठान के भेष में कुछ दूर कार पर फिर पैदल के रास्ते पहाड़ी के ऊपर होते हुए सुभाष काबुल पहुँचे और कुछ दिन काबुल में रहकर फिर मास्को के रास्ते 24 मार्च 1941 बर्लिन पहुँचे। सन् 1941 जून तक उन्होंने जर्मनी के

रिवनट्राप और रोम में इटली के काउंट सीएनओ से मिलकर भारत के कैदी सिपाहियों में से 'आज़ाद हिन्द फौज' की स्थापना करने का प्रस्ताव रखा था जिसके लिए शुरू-शुरू में जर्मन नेता तैयार नहीं हो सके थे। बाद में सुभाष बोस ने उन्हें मना लिया था और इसके बाद सुभाष बोस ने जो कुछ किया था वह सारे हिन्दुस्तान को मालूम है। कैसे उन्होंने मलाया, बर्मा, सिंगापुर में आकर 65000 जापानियों के हाथ में कैदी हिन्दुस्तानी सिपाहियों में से करीब 35000 को लेकर आज़ाद हिन्द पलटन बनाई और 'आज़ाद हिन्द सरकार' उन्होंने कायम की। कैसे उन्होंने उस आज़ाद हिन्द सरकार को कई राष्ट्रों द्वारा मान्यता प्राप्त कराई और 1945 तक उस सरकार को कायम रखा। उन्होंने उस आज़ाद हिन्द पलटन को भेज कर बर्मा-आसाम सरहद पर इम्फाल के ऊपर हमला कराया। उन्होंने ही 'जय हिन्द' नारा बुलन्द किया, 'दिल्ली चलो' का नारा दिया और जापान के सरेंडर करने के कुछ दिन बाद जब अंग्रेज पलटन बर्मा के रास्ते उस प्रदेश में घुस आयी और लड़ाई में जीतने की आशा खत्म होने पर अपने साथियों के राय से एक जापानी हवाई जहाज में उस प्रदेश को छोड़े और चीन के किसी हिस्से में हवाई एक्सीडेंट में गिरे जिसमें कर्नल हबीबुल्ल रहमान और सुभाष बोस जख्मी हो गए। कर्नल हबीबुल्ल रहमान का पहला बयान था कि सुभाष बोस जख्मी होने के एक-डेढ़ दिन बाद जापानी मिलिटरी अस्पताल में दिवंगत हो गए और हबीबुल्ला रहमान धीरे-धीरे अच्छे होकर बाद को हिन्दुस्तान लौटे। जापानी अधिकारियों के रिकार्ड से पता चलता है कि सुभाष बाबू के मरने के बाद उनका मृत शरीर मिलिटरी अस्पताल के पास ही जला दिया गया और उनकी राख टोकियो के एक जापानी बौद्ध मन्दिर में लाकर रखी गयी, जहाँ वह आज भी रखी है।

सुभाष बोस ने हिमालय के हिल स्टेशन डलहौज़ी से मुझको एक पत्र लिखा था। नैनी सेंट्रल जेल में, सन् 1937 के जून के महीने में जब मैं राजनैतिक कैदियों की रिहाई की माँग लेकर नैनी में भूख-हड़ताल कर रहा था। वह बड़ा ही मार्मिक पत्र था। सन् 1937 में रिहाई के बाद कई बार सुभाष बाबू से मेरी मुलाकात हुई जब वह कांग्रेस प्रेसिडेंट थे, जब वह दुबारा कांग्रेस के प्रेसिडेंट चुने गए, त्रिपुरी कांग्रेस में जब बहुत बीमारी हालत में, ब्रिटिश सरकार से पूरी आज़ादी की माँग रख कर 6 महीने का अल्टीमेटम देना चाहते थे और उन्हें देश तथा कांग्रेस नेताओं ने समझा नहीं था। मिनिस्टरी के पदों पर आसीन आराम की जिन्दगी बसर करने वाले नेता लोग यह समझ नहीं पाये कि बहुत जल्द विश्वयुद्ध छिड़ने वाला है। उसके बाद फिर मैंने सुभाष बाबू को देखा सन् 1940 में जनवरी या फरवरी महीने

में। उन दिनों मैं देहरादून में था। मेरे काकोरी केस के साथी रामकृष्ण खत्री का टेलीग्राम मुझे मिला कि दून एक्सप्रेस से सुभाष बोस देहरादून पधार रहें हैं, उनसे स्टेशन पर मिलिए। मैंने स्टेशन पर उन्हें रिसीव किया। सुभाष बाबू ने मुझे जलूस में साथ बैठा लिया और जब जलूस के अन्त में सुबह 10 बजे ही एक बड़ी भारी सार्वजनिक सभा हुई, देहरादून के श्री महावीर त्यागी ने मुझ को उस मीटिंग का सभापति चुना। मेरे ऐतराज़ करने पर सुभाष बाबू ने धीरे से मुझसे कहा—"आप ही सभापति बनना स्वीकार कीजिए और पूरा डिक्टेटर बन कर सभा की कार्यवाही चलाइए।" मुझे उन्होंने यह भी बताया कि उनको देहरादून से सहारनपुर जाना है और सहारनपुर की मीटिंग करके मुजफ्फरनगर पहुँचना है जहाँ शाम की मीटिंग है। देहरादून में भी वह घण्टा सवा घण्टा बोलना चाहते हैं अतः उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मानपत्रों का ताँता और अभिनन्दन पत्रों आदि को पाँच-दस मिनट में मैं खतम करा दूँ और उन्हें घण्टा सवा घण्टा बोलने दूँ।

दिन के दस बजे थे। देहरादून के सारे स्कूल कालेज के विद्यार्थी उस दिन कालेज नहीं गये, दफ्तरों के क्लर्क, बाबू आदि भी दफ्तर न जाकर उस मीटिंग में आये थे। जनता की भारी भीड़ थी। मैंने भी उनके कहे अनुसार 10 मिनट में सारे अभिनन्दन और मानपत्रों को ले लिया। किसी को माइक के सामने आने ही नहीं दिया। मैं माइक पर खड़े-खड़े सिर्फ एनाउंस करता गया कि अमुक संस्था मानपत्र दे रहा है, अमुक संगठन अभिनन्दन कर रहा है, और उनके नाम उल्लेख करके ही अभिनन्दन पत्र लेकर रख लेता और फिर थोड़ा-सा परिचय देकर सुभाष बाबू को खड़ा कर दिया।

वह हिन्दी में बोले और बहुत अच्छा बोले। मुझे उम्मीद नहीं थी कि सुभाष बाबू इतनी अच्छी हिन्दी बोल सकेंगे। उनके सवा घण्टे के धाराप्रवाह भाषण में कहीं उन्होंने एक शब्द के लिए फाल्टर नहीं किया। शुद्ध हिन्दी बोलते रहे और मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हमारे प्रान्त के बड़े मशहूर वक्ताओं से अच्छा बोले। उनके व्यक्तित्व का आकर्षण, उनके अन्तर से निकली हुई बातें सवा घण्टे तक लोगों को अनुप्रेरित करती रहीं। जनता में से एक भी आदमी हिला नहीं। सभा समाप्ति के बाद देहरादून के कालीबाड़ी के पुजारी बंगाली एडवोकेट के घर उनके दोपहर के भोजन का इन्तजाम रखा गया था। हम उन्हें लेकर वहाँ गये।

सहारनपुर चलते वक्त सुभाष बाबू मुझको साथ ले जाना चाहते थे। कुछ निजी कारणों से मैं उनके साथ जाने को तैयार नहीं हुआ। तब उन्होंने मुझे अलग बुला के कहा—आप कलकत्ता आकर मुझसे मिलिए और वह भी बहुत जल्द। आपको

अण्डरग्राउण्ड जाना है। मेरा एक बहुत बड़ा प्रोग्राम है, उसमें आपका साथ चाहिए।

उसके बाद फिर सुभाष बाबू से मेरी कभी मुलाकात नहीं हुई। उनकी कहानी मैं अखबारों में पढ़ता रहा। आज़ाद हिन्द रेडियो से उनका भाषण सुनकर उनकी आवाज को पहचाना।

हमारे सामने अब सवाल उठता है कि सुभाष बाबू जिन्दा हैं कि नहीं, जैसे कुछ लोग दावा करते रहते हैं। इसके उत्तर में मेरा कहना है कि उनके मरने का प्रमाण ज्यादा जोरदार है और जिन्दा रहने का कोई प्रमाण आज तक नहीं मिला। सन् 1955-56 की बात है, मैंने यू0पी0 के एक सरहदी जिले में एक दिन देखा कि हजारों पैम्फ्लेट बाँटे जा रहें हैं जिसका शीर्षक था "वह आ रहें हैं।" पढ़ने पर मालूम हुआ कि सुभाष बाबू उस शहर में पधार रहे हैं। तिथि और समय उसमें दिया गया था और कहा गया था कि हजारों की तादाद में उस स्थान पर आकर उनका स्वागत कीजिए। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि कलकत्ता, बम्बई, राजधानी दिल्ली या हमारे यहाँ की राजधानी लखनऊ छोड़कर यू0पी0 के इस कोने के शहर में क्योंकर सुभाष बाबू उदय होंगे। मैंने उस प्रचारक का नाम पढ़ कर उनके बारे में काफी छानबीन की और मुझे मालूम हुआ कि यह सज्जन 1947 में हिन्दुस्तान की आज़ादी के बाद सुभाष बाबू के नाम से यह कहकर कि सुभाष बाबू को यह रुपया पहुँचाना है, कोई 20—25 हजार रूपया इकट्ठा किए थे। उस चोरी को छिपाने के लिए आज तक यह कहानी यह 'मिथ' कायम रख रहे हैं कि सुभाष बाबू जिन्दा हैं। ऐसे कितने ही शहरों में सुभाष बाबू को पहुँचाने के नाम पर लाखों रुपया इकट्ठा किया गया है जिसे लोग खा गए हैं। यही लोग सबसे ज्यादा प्रचार करते हैं कि वह जिन्दा हैं और हमारे देश के जो लोग नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के भक्त हैं, वे इन लोगों के प्रचार में विश्वास कर लेते हैं कि नेताजी सुभाष चन्द्र बोस जिन्दा हैं।

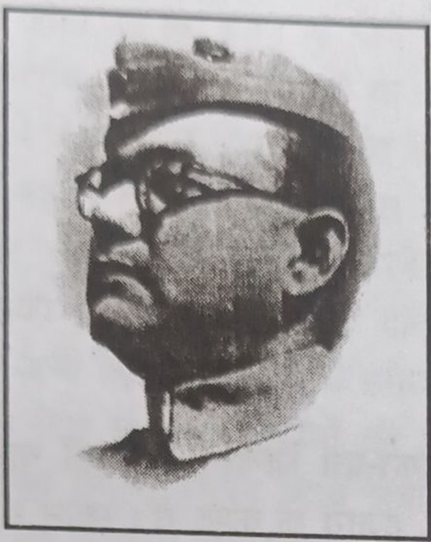
कांग्रेसी नेता यह कहते नहीं अघाते कि महात्मा गाँधी ने तथा कांग्रेस ने हिन्दुस्तान को आज़ाद कराया, लेकिन असली सत्य तो यह है कि अंग्रेज कॉरपोरेट नॉन-वायलेंस सामूहिक या व्यक्तिगत अहिंसा को कभी दिल से राजनीतिक महत्त्व नहीं दिया। अंग्रेज इस मुल्क से चलने को तब तैयार हुए जब उन्हें ऐसा ख्याल हुआ—आई एन ए, बम्बई के नेवेल रेटिंग का विद्रोह आदि से—कि जिन हिन्दुस्तानी मिलिटरी के भरोसे वह भारत पर अब तक राज कर रहे थे उस मिलिटरी के ऊपर भरोसा नहीं किया जा सकता। वह जब कभी विद्रोह कर सकता है। इस विद्रोह की मनोवृत्ति मिलिटरी के अन्दर लाने का श्रेय सबसे ज्यादा नेताजी सुभाष चन्द्र

बोस का था।

सिर्फ महात्मा गाँधी को छोड़कर जिन्होंने गोली से प्राण दिये, और सब कांग्रेसी नेताओं की स्मृति और याद धीरे-धीरे विस्मृति के गर्भ में कालकलवित हो जायेगा। लोग उन्हें धीरे-धीरे बिलकुल भूल जाएँगे। उनका नाम भी याद नहीं रहेगा, लेकिन सुभाषचन्द्र बोस जैसे त्यागी, बलिदानी और विद्रोही तथा उन क्रान्तिकारी शहीदों की याद बनी रहेगी जो देश के लिए फाँसी पर चढ़ गये, गोली मारा, कत्ल किये और गोली खाकर मरे तथा अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया, प्राणों की बाजी लगा दी।

आज़ादी के बाद—16 साल तक अहिंसा का प्रचार और अहिंसा से ही मुल्क आज़ाद हुआ—इस झूठे प्रचार के बाद आज ऐसा समय आ गया है जब अहिंसा का प्रचार करना देशद्रोह समझा जाने लग गया है। आज जनता समझने लगी है कि पाकिस्तान और विस्तारवादी चीन हमारा दुश्मन है। इससे मुकाबला अहिंसा से कभी नहीं हो सकता। उसके लिए मिलिटरी बढ़ाना होगा, पलटन तैयार करना होगा—और जिसके लिए अहिंसावादी नहीं, बल्कि विद्रोही सुभाष जैसा, क्रान्तिकारी शहीदों जैसा त्यागी और बलिदानी तथा कठोर नेता चाहिए।

आज देश की यही माँग है।



नेताजी सुभाष चन्द्र बोस

आज भी देश को अहिंसावादी नहीं, सुभाष जैसा कठोर नेता चाहिए। भारत के स्वाधीनता के 60 वर्षों बाद भी नेताजी की मृत्यु के रहस्य का पर्दा भारत सरकार न उठा सकी!



शहीदे आजम भगत सिंह



बटुकेश्वर दत्त

8 अप्रैल, सन् 1929 को सरदार भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली के एसेम्बली भवन में बम फेंककर इंकलाब–जिन्दाबाद के नारे लगाए थे।

बटुकेश्वर दत्त

"भगत-दत्त जिन्दाबाद, भगत-दत्त जिन्दाबाद" इन्हीं नारों से आसमान गूँज रहा था–बार-बार, सैकड़ों बार, हजारों के कण्ठ से। स्थान था रावी के तट पर लाहौर कांग्रेस का सालाना अधिवेशन, समय–सन् 1929 का दिसम्बर महीना।

उस अधिवेशन में महात्मा गांधी खुद उपस्थित थे और उनकी उपस्थिति में गांधीवादी कांग्रेसी गांधीजी की जय उतना नहीं बोल रहे थे जितना भगत-दत्त की जय बोलते रहे। यह सत्य पण्डित जवाहरलाल नेहरू अपनी आत्मकथा में मानने को बाध्य हुए हैं।

इसी लाहौर कांग्रेस में देश को पूर्ण स्वतन्त्र करने का प्रस्ताव पास हुआ था और उन दिनों सिर्फ रावी तट पर कांग्रेस अधिवेशन में ही नहीं, सारे भारत वर्ष में, पूर्व से पश्चिम तक तथा हिमालय से सुदूर कन्याकुमारी तक, भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त का जयघोष किया जाता था। ये वही दोनों क्रान्तिकारी थे – दिल्ली असेम्बली बम केस में जिन्हें आजन्म कारावास की सज़ा मिली थी और उन पर लाहौर षड्यन्त्र केस का मुकदमा चल रहा था।

कैसा मुकदमा?

ताजिरात हिन्द का दफा 121 ए, 120 बी और 302 का मुकदमा। जिसका मतलब था ब्रिटिश भारत से अंग्रेजी सरकार के खिलाफ युद्ध करना, ब्रिटिश बादशाह को तख्त से महरूम करना, उसके लिए साज़िश करना और कत्ल करना। अंग्रेज पुलिस आफिसर मिस्टर जे. पी. सैण्डर्स को गोली मारकर कत्ल करना आदि जुर्म उन क्रान्तिकारियों के ऊपर था।

और देश उन क्रान्तिकारियों की, बड़े से बड़े कांग्रेस के नेता से ज्यादा इज्जत करता था, सम्मान करता था और प्यार करता था।

सन् 1929 के 23 दिसम्बर के दिन वाइसरॉय लॉर्ड इरविन के स्पेशल ट्रेन

को दिल्ली के पास बम से उड़ा देने की कोशिश की गई थी। वाइसरॉय बाल-बाल बच गये थे। उनके डिब्बे के दो डिब्बे पीछे डाइनिंग कार का काफी भाग उड़ गया था और यह समझा जाता था कि इंजन के नीचे या वाइसरॉय के डिब्बे के नीचे विस्फोट होने से वाइसरॉय का बचना मुश्किल था। उन्हीं दिनों क्रान्तिकारियों के खिलाफ महात्मा गांधी ने जेहाद बोल दिया था और वाइसरॉय स्पेशल को उड़ाने की कोशिश के खिलाफ कांग्रेस में एक प्रस्ताव पास करवाया था। वह प्रस्ताव खुद गांधी जी लाये थे और उनके भरसक कोशिश करने के बावजूद सिर्फ इक्यासी के बहुमत से पास हो सका था जबकि वोट देने वाले 1713 थे।

महात्मा गांधी और अन्य कांग्रेसी नेताओं के हमेशा विरोध और प्रचार करने के बावजूद भी जनता के दिल में क्रान्तिकारियों की इज्ज़त कुछ भी कम नहीं हुई थी। इसका आँखों देखा प्रमाण हमको मिला जबकि काकोरी केस के कैदी सन् 1937 में रिहा हुए। वह काकोरी डिमांस्ट्रेशन – वैसा अभूतपूर्व और विराट रिसेप्शन और अभिनन्दनों का ताँता ऐसा था जो कि उससे पहले महात्मा गांधी और पण्डित जवाहरलाल नेहरू को भी नहीं मिला था। उस काकोरी डिमांस्ट्रेशन के खिलाफ गांधी जी ने अपने 'यंग इण्डिया' में लिखा था कि वह सब गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए था।

उन दिनों कांग्रेस के नेता हम क्रान्तिकारियों को कांग्रेस में शामिल करने के लिए आपस में होड़ करते थे—यह जानते हुए भी कि हमें अहिंसा में बिलकुल विश्वास नहीं था। उन दिनों हममें से किसी को भी वे छोड़ना नहीं चाहते थे और कांग्रेस का मेम्बर बना लेते थे।

मुझे याद है, यशपाल जी की वह चिट्ठी जिसे वो सन् 1938 में अपनी रिहाई के बाद भुवाली सेनिटोरियम से मुझे दिल्ली जेल में लिखा था, अपने निराले अन्दाज में—"कि मेरे रिहा होते ही कांग्रेसियों के आग्रह पर 'फोर आना वर्थ ऑफ पैट्रियाटिज़्म'—याने चार आने की देशभक्ति खरीद ली है।" उनका आशय कांग्रेस की चवन्नी मेम्बरशिप से था।

क्रान्तिकारियों के कांग्रेस में शामिल होने का नतीजा यह हुआ कि हम क्रान्तिकारियों ने कांग्रेस प्लेटफार्म से सम्भावित क्रान्ति का खूब प्रचार किया। लेकिन देश आजाद होने पर ज़माना पलटा खा गया। वही कांग्रेसी नेता ऊपर से नीचे तक अहिंसा को fetish* बनाया, राजनीतिज्ञों ने जातिभेद की सृष्टि की और कांग्रेस ने ही मुल्क को आज़ादी दिलाई—जनता में ऐसा प्रचार करके और यही

* fetish–inanimate object worshipped by savages.

बातें बार-बार दोहराकर जनता में कुछ विश्वास भी उत्पन्न कर दिया। जो क्रान्तिकारी कांग्रेस के अन्दर बने रहे उनको कहीं पनपने नहीं दिया, किसी पद पर जमने भी नहीं दिया। शायद शायर का वह शेर मौजू है और फिट बैठता है—

"वक्त गुलशन पे पड़ा था तो लहू हमने दिया,
अब बहार आई तो कहते हैं तेरा काम नहीं।"

जहाँ क्रान्ति सफल नहीं हुई और जहाँ शक्ति का हस्तान्तरण हुआ तो ऐसा होना कुछ स्वाभाविक भी था। त्याग और बलिदान किसने किया और सरकार किसके हाथ में आई?

नतीजा यह हुआ कि देश आज उन क्रान्तिकारियों के बलिदान को भी भूल गया है कि देश को आजाद कराने की कोशिश में क्रान्तिकारियों ने अपने को भुलाकर सब कुछ न्यौछावर कर देने का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया था जो भारत के अलावा दुनिया में कहीं भी और दिखाई नहीं देता—मैजिनी गौरेबाल्डी की इटली में, न ही रूस की कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों में और न चीन के क्रान्तिवादियों में। इस दिशा में भारतवर्ष के क्रान्तिकारियों ने दुनिया के सब देशों के सामने जो आदर्श प्रस्तुत किया है वह अतुलनीय है, अभूतपूर्व है।

जिस भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त का जय गांधीजी से ज्यादा बोला जाता रहा—वह आज कहाँ हैं?

भगत सिंह तो फाँसी पर चढ़कर शहीद हो, गए लेकिन उमर कैद की सज़ा काटने वाले बटुकेश्वर दत्त को कौन पूछता है? इसके बावजूद दत्त आज भी इंटेलेक्चुअली एलर्ट हैं, अच्छे वक्ता हैं, आज भी वैसे ही आदर्शवादी हैं और बहुतेरे कांग्रेसी मिनिस्टरों के विपरीत, पद और आरामतलबी के 16 साल के जीवन ने जिन मिनिस्टरों का नैतिक चरित्र गिरा दिया है, दत्त का चरित्र आज भी वैसा ही ऊँचा है।

लेकिन वही बटुकेश्वर दत्त आज अगर मिनिस्टर न सही, एम.पी. भी क्यों नहीं?

इसका जवाब कौन देगा?

डा. भगवानदास माहौर

जो देखा हिस्टरी इस बात का कामिल यकीं आया।
जिसे मरना नहीं आया उसे जीना नहीं आया॥

किसी शायर ने ठीक ही कहा है कि जिस व्यक्ति को समुचित सोद्देश्य के लिए यथायोग्य अवसर पर आवश्यकतानुसार प्राणों की बाजी लगाकर समष्टि के हित में आगे बढ़ने का सत्संकल्प कार्यान्वित करना नहीं आया, उसे जीना नहीं आया। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के चंगुल से भारत को मुक्त कराने के लिए कितने ही क्रान्तिवीरों ने इसी प्रकार जीने का व्रत लिया और उस पर अडिग रहने का प्रयास किया और इसी कारण आज भी देश की जनता के हृदय में इन क्रान्तिवीरों के प्रति असीम आस्था, आदर एवं श्रद्धा का स्थान है। कितनों ने अपने भौतिक शरीर की स्वतन्त्रता संग्राम में आहुति दे दी किन्तु उनका यश अजर-अमर है। सरदार भगत सिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद आदि इनमें प्रमुख हैं। इन्हीं की श्रेणी में इनके सहयोगी डाक्टर भगवानदास माहौर भी आते हैं जिन्होंने प्रसिद्ध भुसावल बमकाण्ड में अपने विरुद्ध बयान देने आये हुए मुखबिरों के ऊपर, स्वयं पुलिस की हिरासत में रहते हुए एवं कड़े बन्दोबस्त के बावजूद, गोली चलाकर कालेपानी की सज़ा पायी थी तथा विगत 12 मार्च 1979 को लखनऊ विश्वविद्यालय में अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद की कांस्य मूर्ति के अनावरण के अवसर पर इच्छा मृत्यु प्राप्त की थी।

इन्ही स्वर्गीय डाक्टर भगवानदास माहौर को नवें दर्जे के स्कूली छात्र के रूप में मैंने सन् 1924 में झाँसी में 'हिन्दुस्तान प्रजातान्त्रिक संघ' का सदस्य बनाया था तथा क्रान्तिकारी रंगरूट की तरह प्रशिक्षित करना प्रारम्भ किया था। तब मैं स्वप्न में भी कल्पना न कर पाया था कि वे आगे चलकर देश के क्रान्तिवीरों

में इतना ऊँचा सम्मानित स्थान प्राप्त करेंगे। इसी प्रकार इसी वर्ष नेपाल की सीमा पर निर्मली नामक स्थान पर शहीद चन्द्रशेखर आजाद की मूर्ति का उनके शहीदी दिवस 27 फरवरी को अनावरण के अवसर पर एकत्र विभिन्न क्रान्तिवीरों में से कोई भी यह कल्पना नहीं कर सकता था कि उनके साथ उपस्थित डाक्टर भगवानदास माहौर दो सप्ताह के अन्दर ही लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रांगण में आजाद की कांस्य मूर्ति के अनावरण के अवसर पर क्रान्तिकारियों की हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक सेना के सेनापति की आत्मा से पूर्णतः समरस होकर अपनी ऐहिक शरीर पुष्पांजली के रूप में अर्पित कर इच्छा मृत्यु प्राप्त कर लेंगे। तब वे मेरे ही निकट बैठे हुए थे और उक्त अवसर पर उपस्थित क्रान्तिवीरों में से सर्वप्रथम डाक्टर माहौर को ही भाषण देने के लिए बुलाया गया था। इस पर वे जिस तपाक से उठे थे उसे देखते हुए मैंने उन्हें सचेत कर दिया था कि बहुत धीरे-धीरे मंच पर चढ़ना और वहीं बैठकर ही शान्ति के साथ भाषण करना, किन्तु आजाद की मूर्ति के सान्निध्य में ही प्राणों की आहुति चढ़ाने के लिए कृतसंकल्प डाक्टर माहौर पर मेरी सलाह का तब क्या असर होने वाला था !

वे द्रुत गति से आगे बढ़े और 68 वर्ष से कुछ अधिक अवस्था में भी नवयुवकोचित उत्साह से वे मंच की ऊँची-ऊँची सीढ़ियाँ तेजी से चढ़ गये और अपने जोशीले भाषण में उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि जिस प्रकार के स्वतन्त्र भारत की कल्पना को लेकर क्रान्तिकारी वीरों ने प्राणों को हथेली पर रखकर साहसिक कार्य किया तथा आवश्यकता पड़ने पर हँसते-हँसते प्राणोत्सर्ग किया उसका स्वतन्त्रता-प्राप्ति के 31 वर्ष बाद भी कहीं साकार रूप नहीं दिखायी देता। उनका यह ओजस्वी भाषण उपस्थित श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध किये हुए ही था कि एकाएक उन्होंने सन् 1850 के क्रान्तिकारी सिपाहियों का झण्डा-गीत सस्वर आवेश के साथ गाना शुरू कर दिया। यह झण्डा गीत आज भी देश के लिए प्रेरणास्पद है, जो इस प्रकार है–

हम हैं इसके मालिक हिन्दुस्तान हमारा।
पाक वतन है कौम का जन्नत से भी प्यारा॥
ये है हमारी मिल्कियत हिन्दुस्तान हमारा।
इसकी रुहनियत से रोशन है जग सारा॥
कितना कदीम कितना नईम सब दुनिया से न्यारा।
करती है जरखेज जिसे गंगो-जमुन की धारा॥

ऊपर बर्फीला पहरेदार हमारा।
नीचे साहिल पर बजता सागर का नक्कारा॥
इसकी खानें उगल रही हैं सोना हीरा पारा।
इसकी शानशौकत का दुनिया में जयकारा॥
आया फिरंगी दूर से ऐसा मंतर मारा।
छूटा दोनों हाथ से प्यारा वतन हमारा॥
आज शहीदों ने है तुमको अहले वतन ललकारा।
तोड़ो गुलामी की जंजीरें बरसाओ अंगारा॥
हिन्दू मुसलमां सिक्ख हमारा भाई भाई प्यारा।
यह है आज़ादी का झंडा इसे सलाम हमारा॥

स्पष्ट है, सन् 1850 का उक्त झण्डा गीत गाते हुए डाक्टर माहौर ने प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम के उन क्रान्तिकारी सैनिकों से लेकर प्रथम महायुद्ध के समय सेना में विद्रोह कराकर देश को स्वतन्त्र कराने के लिए प्रयत्नशील वीरों और फिर भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद की हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना के साथ ही नहीं सुभाष बाबू आज़ाद हिन्द फौज तथा नौसेना में विद्रोह करने वाले क्रान्तिकारियों की भावना से समरस होकर वर्तमान भारत के रूप से निराश हो इन बलिदानी हुतात्माओं के सान्निध्य में ही पहुँचने का अपना संकल्प कार्यान्वित कर प्राणों की आहूति ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसर पर चढ़ा दी तो उसमें आश्चर्य ही क्या है? डाक्टर माहौर के उस समय के ओज और तेज से उपस्थित सभी प्रभावित थे। उस अवसर पर उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त, जो काकोरी षड़यन्त्र केस में क्रान्तिकारियों के प्रमुख वकील के रूप में कार्य कर चुके थे, के अलावा प्रदेश के वर्तमान मुख्यमंत्री बनारसी दास, कुछ अन्य मन्त्रीगण, शासन के अधिकारी एवं प्रतिष्ठित नागरिक तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्र भी उपस्थित थे। अतः जब अस्पताल ले जाये जाने के बाद डाक्टर माहौर की मृत्यु की आधिकारिक रूप से पुष्टि की गयी तब उनके पार्थिव शरीर की अन्त्येष्टि पूरे राजकीय सम्मान के साथ हुई तो उसमें आश्चर्य ही क्या है? इसमें पुलिस दल तो सम्मिलित था ही, आज़ाद हिन्द फौज के कप्तान रामसिंह को जब घटना का पता लगा तो वे भी अपने पूरे बैण्ड के साथ जुलूस में सम्मिलित हुए। यही नहीं, अन्त में डाक्टर माहौर का पवित्र अस्थिकलश समारोहपूर्वक लखनऊ से रेल मार्ग द्वारा झाँसी ले जाया गया तथा सभी प्रमुख स्टेशनों पर जनता की ओर से

और साथ ही प्रशासकीय स्तर पर माल्यार्पण किया गया तथा पुष्पांजलियाँ अर्पित की गयीं। अस्थिकलश की इस शोभायात्रा में प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री बनारसीदास, परिवहन मन्त्री श्री सत्य प्रकाश मालवीय, विद्युत मन्त्री श्री रेवती रमण एवं खेलकूद मंत्री श्री हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव तथा अन्य अधिकारियों के साथ मध्य प्रदेश के मन्त्री श्री जगदीश प्रसाद गुप्त, अनेक स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी जिनमें काकोरी-काण्ड के श्री रामकृष्ण खत्री, श्री प्रेमकिशन खन्ना, श्री जयदेव कपूर, श्री शिव वर्मा आदि झाँसी तक गये थे। स्वभावतः मेरी स्वयं की उपस्थिति भी इस शोभायात्रा में अनिवार्य ही थी।

बंगाल के क्रान्तिकारी संगठन अनुशीलन समिति की वाराणसी में सन् 1922-23 में नींव डालने के पश्चात सन् 1924 में मैंने झाँसी को केन्द्र बनाकर यही कार्य वहाँ पूरे उत्साह के साथ करना प्रारम्भ कर दिया था। तब तक उत्तर प्रदेश में बंगाल के दोनों क्रान्तिकारी दल युगान्तर एवं अनुशीलन समिति का एकीकरण होकर हिन्दुस्तानी प्रजातन्त्र संघ अस्तित्व में आ चुका था। उन दिनों झाँसी में मैंने जिन युवकों को उक्त हिन्दुस्तानी प्रजातन्त्र संघ के सक्रिय सदस्य के रूप में क्रान्ति के पथ पर अग्रसर कराया था उनमें प्रमुख थे मास्टर रुद्र नारायण, सदाशिवराव मलकापुरकर तथा भगवानदास माहौर। मैं अपना यह कार्य वहाँ दीर्घकाल करता रह सकता था, किन्तु 9 अगस्त 1925 के दिन हुई प्रसिद्ध काकोरी ट्रेन डकैती में सम्मिलित होने के सिलसिले में पुलिस ने 29 सितम्बर, 1925 को झाँसी में मेरे घर पर धावा बोला किन्तु मुझे वह गिरफ्तार न कर सकी। जो भी हो, इस कारण मुझे कुछ दिनों झाँसी में और फिर उत्तर प्रदेश के अन्य नगरों में गुप्त रूप से रहना पड़ा और आखिर भागकर बम्बई और कराची जाना पड़ा था। इस बीच झाँसी के क्रान्तिकारी संगठन का नेतृत्व चन्द्रशेखर आज़ाद के हाथों में आ गया था। वे गोली का निशाना लगाने में अद्वितीय थे ही, उनके द्वारा प्रशिक्षित भगवानदास माहौर भी इस कला में बहुत तेज़ थे। एक बार बसई में राजा खनियाधाना के दरबार में ठाकुरों ने अकस्मात् आज़ाद की निशानेबाज़ी की परीक्षा लेनी चाही तो मास्टर रुद्रनारायण ने तपाक से कहा—उनकी क्या परीक्षा लेते हो, उनके शिष्यों से तो पहले निपट लो। अतः भगवानदासजी को बन्दूक थमा दी गयी। उन्होंने पेड़ पर लगे एक अनार को अपनी गोली से उड़ा दिया। ठाकुरों को सन्तोष न हुआ। उन्होंने व्यंग किया कि अन्धे के हाथ भी बटेर लग जाती है। इस पर भगवानदासजी ने दुबारा निशाना साधा और इस बार अनार नहीं उसकी डंडी को निशाना बनाया। डंडी कट जाने से अनार जमीन पर गिर पड़ा। सभी

देखते रह गये। अब ठाकुरों का साहस नहीं था कि वे माहौर के गुरु चन्द्रशेखर आजाद की निशानेबाजी को चुनौती देते।

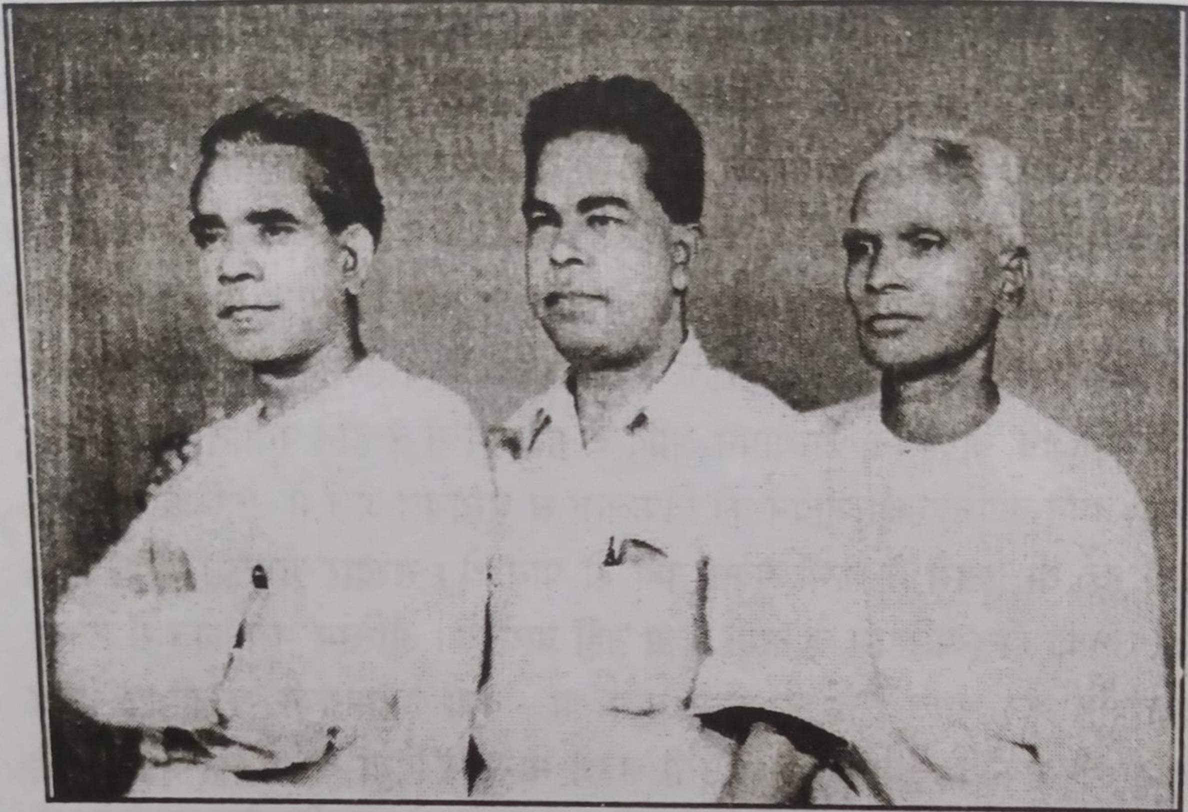
माहौरजी की इसी विशेषता के कारण जब क्रान्तिकारी दल ने लाहौर में लाला लाजपतराय पर लाठी प्रहार कर समस्त राष्ट्र का अपमान करने वाले पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट को उसके कार्यालय के सामने गोली से उड़ा देने का निश्चय किया तो इस कार्य के लिए भगत सिंह, राजगुरु एवं चन्द्रशेखर आजाद के साथ माहौरजी को भी सम्मिलित किया गया था। जब भगत सिंह एवं राजगुरु ने सांडर्स को गोली का निशाना बनाया था तब थोड़ी ही दूरी पर अपने साथियों की रक्षा के लिए चन्द्रशेखर आजाद के साथ माहौरजी भी वहाँ उपस्थित थे। यही नहीं, सन् 1928 के प्रसिद्ध असेम्बली बम काण्ड में सरदार भगत सिंह अपने साथ बटुकेश्वर दत्त के बजाय माहौर जी को ही अपने साथ रखना चाहते थे। कारण, वे उनकी निशानेबाजी से कहीं अधिक देश की राजनीति के गम्भीर अध्ययन एवं विचारों के प्रतिपादन की उनकी क्षमता से प्रभावित थे। चन्द्रशेखर आजाद ने झाँसी केन्द्र को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से ही भगत सिंह का आग्रह अस्वीकार कर दिया था और तब बटुकेश्वर दत्त को असेम्बली बम काण्ड में भेजा गया था। बाद में इन सब काण्डों के कारण उत्तर भारत में पुलिस की सरगर्मी बहुत बढ़ गयी तब आजाद ने दल की ग्वालियर की बम फैक्टरी का सारा सामान लेकर भगवानदास माहौर तथा सदाशिवराव मलकापुरकर को महाराष्ट्र में राजगुरु का पता लगाकर उनके पास पहुँचने का आदेश दिया। दोनों रवाना हुए किन्तु भुसावल रेलवे स्टेशन पर आबकारी पुलिस के चक्कर में पड़कर दोनों दो भरे बम, कुछ बम के खोल, एक माउज़र पिस्तौल एवं 60 कारतूसों के साथ गिरफ्तार हो गए। भगवानदास ने संघर्ष करने के लिए हवाई फायर किये किन्तु बच निकलने में वे सफल नहीं हुए। इस सिलसिले में उन पर जो मुकदमा चला वही भुसावल बम काण्ड के नाम से प्रसिद्ध है।

सरदार भगत सिंह एवं चन्द्रशेखर आजाद के साथी होने के कारण पुलिस ने इनके मुकदमे में लाहौर षड्यन्त्र केस के मुखबिर फणीन्द्रनाथ घोष तथा जयगोपाल को गवाह के रूप में पेश करने का निश्चय किया। पुलिस उन्हें इस प्रकार भयंकर क्रान्तिकारी सिद्ध कर अधिकतम सज़ा दिलाना चाहती थी। दूसरी ओर, माहौर और मलकापुरकर को दल के इतने बहुमूल्य शस्त्रात्र व्यर्थ गँवाने का हार्दिक दुःख था। अतः उन्होंने एक नयी योजना बनायी और उसकी सूचना चन्द्रशेखर आजाद को दी तथा उन्होंने उसे स्वीकृति देकर आवश्यक सारी व्यवस्था करा दी। भुसावल

बम काण्ड का मुकदमा सेशन कोर्ट में चल रहा था। लाहौर षड्यन्त्र केस के मुखबिर उसमें गवाही देने आने वाले थे। पुलिस का कड़ा बन्दोबस्त था। हिन्दुस्तानी सिपाहियों के बजाय माहौर जी के साथ विशेष रूप से अंग्रेज सार्जेण्ट रखे गए थे। उन्हें हथकड़ियाँ पहनाकर रस्से से बाँध दिया जाता था। ऐसी स्थिति में भी लाहौर षड्यन्त्र केस के सरदार भगत सिंह तथा उनके साथियों के विरुद्ध पुलिस की ओर से गवाही देने वाले मुखबिर फणीन्द्रनाथ घोष एवं जयगोपाल अदालत में बयान दे चुके थे तथा लंच के लिए अदालत उठ चुकी थी तब खाना खाने के बहाने माहौर जी ने अपनी हथकड़ी खुलवायी और कमर से पिस्तौल निकालकर तेजी से उस दिशा में दौड़ पड़े जहाँ लाहौर से आयी पुलिस मुखबिरों को घेरा डाले पड़ी थी। सब लोग देखते ही रह गये और माहौर जी ने दोनों मुखबिरों पर एक-एक गोली दागी और फिर पुलिस अधिकारियों पर गोली चलाना चाहते ही थे कि उनकी पिस्तौल जाम हो गयी। इस पर भी वे संघर्ष करते रहे किन्तु शीघ्र पकड़ लिए गये। मुखबिर घायल जरूर हुए किन्तु कोई मरा नहीं और आजाद द्वारा इतनी गोपनीयता के साथ उनके पास जेल में भेजा गया पिस्तौल भी व्यर्थ गया, इसकी माहौर जी को सदैव मर्मान्तक पीड़ा होती रही। उन दिनों वे परेशान थे कि आखिर अब आजाद को कैसे मुँह दिखाऊँगा। भुसावल बम काण्ड में माहौर जी को कालेपानी की सज़ा हुई जो उन्होंने विभिन्न जेलों में काटी और आखिर सन् 1938 में राज्यों में कांग्रेसी सत्ता स्थापित होने पर अन्य क्रान्तिकारियों के साथ वे भी कारागार से मुक्त किए गये। सन् 1940 में वे पुनः गिरफ्तार किए गये एवं 1945 में रिहा हुए।

जेल से छूटने के पश्चात माहौर जी ने अपने व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की ओर ध्यान दिया। अध्ययन, अध्यापन, साहित्य-सृजन, साहित्यिक गवेषणा, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन की व्यापक पृष्ठभूमि सम्बन्धी ऐतिहासिक आधारों की खोज आदि बातों पर आपने अपनी शक्ति केन्द्रित की। 'यश की धरोहर' में आपने भगत सिंह, आजाद तथा अपने क्रान्तिकारी जीवन के संस्मरण संगृहीत किये हैं। '1857 के स्वतन्त्रता संग्राम का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव' में आपने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के विरुद्ध जाग्रत जनमानस ने हिन्दी साहित्य को कैसे प्रभावित किया यह सोदाहरण प्रस्तुत किया है। इस शोध प्रबन्ध के आधार पर आगरा विश्वविद्यालय ने आपको पी.एच.डी. की उपाधि प्रदान की थी। इसी प्रकार मदनेश कृत 'लक्ष्मीबाई रासो' आपका सम्पादित ग्रन्थ है। इसी ग्रन्थ के आधार पर हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने आपको महोपाध्याय की उपाधि से विभूषित किया

था। 'अग्नि स्वर'—उनका-कविता संग्रह, 'बलिदान'—एकांकी-संग्रह, 'सुमन संचय'—निबन्ध संग्रह, 'आत्मालोचन'—राजनीतिक लेख संकलन आदि आपके प्रकाशित ग्रन्थ हैं। कविता-संग्रह में आपकी अनेक राष्ट्रीय रचनाएँ हैं जिनमें से कई काफी लोकप्रिय हैं और स्वयं माहौर जी को ये रचनाएँ बहुत प्रिय रहीं हैं। इनमें 'मेरे शोषित की लाली से कुछ तो लाल धरा होगी' तथा 'मुझे जिन्दगी से सदा प्यार रहा, सदा मौत से टकराता रहा' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार साहित्य-सृजन, अध्ययन, अध्यापन आदि के माध्यम से उन्होंने पर्याप्त यश कमाया, किन्तु अपने क्रान्तिकारी जीवन की विफलता से भुसावल जेल में उन्हें जो मर्मान्तक व्यथा हुई थी उससे वे कभी मुक्त नहीं हो पाये थे। सरदार भगत सिंह के साथ हुआ उनका हास-परिहास वे कभी भुला नहीं पाये थे। अन्तिम मुलाकात में उनका गाना सुन कर भगत सिंह ने उनसे पूछा था—'क्यों हनुमानजी, फाँसी के तख्ते पर भी गा सकोगे? माहौर जी ने उसी लहजे में उत्तर दिया था—'क्यों नहीं? यदि तुम्हारे जैसे जामवन्त याद दिला दें।' इसी प्रकार दल के बम-पिस्तौल व्यर्थ गँवाने पर और विशेषतः चन्द्रशेखर आजाद द्वारा उनके पास जेल में भिजवाये पिस्तौल का भी सदुपयोग न कर पाने पर उनके मन में जो प्रश्न पैदा हुआ था कि अब मैं आजाद को कैसे मुँह दिखाऊँगा, उनके अन्तराल में निरन्तर गहराई से उतरता जा रहा था। सरदार भगत सिंह से कहे मुताबिक न तो वे फाँसी के तख्ते पर गा सके थे और न आजाद के कथनानुसार अपनी छाती पर गोली ही खा सके थे। आजाद तो सन् 1931 में इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में शहीद हो गये थे। अतः उन्हें मुँह कैसे दिखाया जाए—इसका महत्त्व ही नहीं रह गया था, किन्तु लखनऊ में जब डाक्टर भगवानदास माहौर के सम्मुख चन्द्रशेखर आजाद की आदमकद मूर्ति का अनावरण हुआ तो वर्षों से दबी पड़ी उनकी मर्मान्तक पीड़ा एकाएक तीव्रता के साथ उभर आयी और उन्होंने तत्काल संकल्प किया कि प्रत्यक्ष चन्द्रशेखर आजाद नहीं तो उनकी मूर्ति के सम्मुख प्राणोत्सर्ग कर दिखा देना है कि माहौर मृत्यु का वरण भी करना जानता है। इसे उन्होंने विगत 12 मार्च 1979 को लखनऊ में कार्यान्वित भी कर दिखाया।



डा. भगवानदास माहौर, शचीन्द्र नाथ बख्शी, सदाशिवराव मलकापुरकर

शचीन्द्र नाथ बख्शी ने स्वर्गीय क्रान्तिवीर जोगेशचन्द्र चटर्जी के सहयोग से सन् 1922 में ही वाराणसी में बंगाल के क्रान्तिकारी संगठन अनुशीलन समिति का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। सन् 1924 में आपने झाँसी को केन्द्र बनाकर भगवानदास माहौर, सदाशिवराव मलकापुरकर, मास्टर रुद्र नारायण आदि को क्रान्तिकारी बनाया था। प्रसिद्ध काकोरी काण्ड में आपको आजन्म कालेपानी की सज़ा हुई थी।

मोहित अधिकारी

हम आज अपने क्रान्तिवीरों को भूलते जा रहे हैं। ऐसे कई नव-रत्नों को तो, साधारण जनता की कौन कहे, जानकार लोग भी भूल गए हैं और आज मैं अपने जीते-जी ही यह देखकर वेदना से भर उठता हूँ कि मेरे वे वीर साथी भुला दिए गए हैं।

मेरे एक साथी थे मोहित—सुपुष्ट-सुन्दर शरीर, उत्तम चरित्र और बुद्धि के धनी। मोहित ने बंगाल के मैमनसिंह जिले में (जो अब बांग्लादेश में है) एक मध्यमवर्गीय परिवार में जन्म लिया था। पिता ब्रह्मसमाज के आचार्य और प्रचारक थे। माँ की मृत्यु हो जाने से पिता अपने इकलौते बेटे को साथ लेकर कलकत्ता में रहने लगे। पिता के धार्मिक संस्कारों ने पुत्र को दिशा दी। उसने सही अर्थों में जीवन के प्रारम्भिक काल में अपना निर्माण करने में मन लगाया। पिता ब्रह्मसमाज के प्रचार-कार्य में लगे रहते थे और मोहित अपने अध्ययन और शारीरिक उन्नति में लगे रहते। बालक मोहित ने स्वास्थ्य और अन्तःकरण दोनों का ही अच्छा विकास किया, किन्तु शालीय शिक्षा से उसका मन न भरा। मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद उसने कालेज में प्रवेश न लेकर एक इंजीनियरिंग फर्म में नौकरी कर ली और इस प्रकार सिविल इंजीनियरिंग की व्यावहारिक शिक्षा अर्जित की।

तीन साल में ही उन्होंने स्वतन्त्र व्यवसाय शुरू कर दिया। अब वे भवन-निर्माण आदि की ठेकेदारी का कार्य करने लगे। इसी समय उनके पिताजी को ब्रह्मसमाज की ओर से बिहार में कार्य करने के लिए भेजा गया। मोहित भी पिता के साथ गये। छोटी उम्र होने पर भी उनकी चतुरता, ईमानदारी और परिश्रम के कारण मोहित का काम बहुत जल्द जम गया। वे भागलपुर में रहते थे और भागलपुर, पूर्णिया, साहबगंज आदि में मकानों और सड़कों के काम उन्हें मिलने लगे।

इस कार्य में मोहित ने एक ऐसा अनुकरणीय आदर्श रखा जो इस क्षेत्र में कार्य करने वालों के लिए ही नहीं वरन् सभी लोगों के लिए देश-सेवा और

ईमानदारी का मानदण्ड मानने योग्य है। भागलपुर जिले में एक विद्यालय की इमारत बनाने का ठेका उनको मिला। मोहित ने बड़े ही परिश्रम से और ईमानदारी के साथ कार्य पूरा किया। काम पूरा होने पर उन्होंने हिसाब लगाया तो पाया कि पूरे काम में जितने की निविदा (टेंडर) स्वीकृत हुई थी उससे बहुत ही कम रुपयों में काम पूरा हो गया और वह भी उत्तम रीति से। मोहित के हिसाब से उनके न्याज्य मुनाफे से अधिक रुपये बच रहे थे। इन्होंने अधिक रुपयों को जिला बोर्ड को लौटाने का निश्चय किया। साथियों ने और बाद में अधिकारियों ने भी कहा कि इस बचे हुए धन को लौटाने का कोई प्रश्न नहीं। यह तो तुम्हारे परिश्रम और कुशलता का पुरस्कार है। लेकिन उदात्त-चरित्र मोहित को यह बात पसन्द न आयी। वे रुपये लौटाने पर ही अड़ गये और उन्हें रुपये वापस करने पर ही सन्तोष हुआ। उन्होंने कहा—लागत से निश्चित प्रतिशत से अधिक मुनाफा लेना मेरे सिद्धान्त के खिलाफ है। अधिकारीगण बहुत प्रभावित हुए।

इसके बाद तो उन्हें इतना काम मिलने लगा कि उन्हें अपना एक वर्किंग पार्टनर (सहकारी हिस्सेदार) भी रखना पड़ा। ठेकेदारी का काम करते हुए भी मोहित किसी से दबते नहीं थे। वे राजनीति के कार्यों से दूर रहते हुए भी खद्दर पहनते थे। ऐसे अनेक संस्कार उन्हें अपने पिताजी से मिले थे।

मेरा उनसे प्रथम परिचय भागलपुर में ही सन् 1926 में हुआ। वर्ष का पूर्वार्द्ध था और काकोरी षड्यन्त्र काण्ड में वारंट होने से भूमिगत होकर रह रहा था। मैंने अपना नाम विनय कुमार घोष रख लिया था और भागलपुर को केन्द्र बनाकर बिहार में क्रान्तिकारी संगठन का काम देखता था। एक महीने के अन्दर ही मोहित अधिकारी से जान-पहचान हो गयी। वे भी मेरी ही उम्र के थे। इसलिए हमारे घुलने-मिलने में अधिक देर न लगी। फिर तो मैं अधिकांश मोहित के यहाँ ही रहने लगा। धीरे-धीरे मोहित भी अपना काफी समय क्रान्तिकारी कार्यों में देने लगे। वे कई नवयुवकों को क्रान्ति-पथ में लाए भी। फिर तो मोहित का घर क्रान्तिकारियों का अड्डा बन गया।

मोहित गुणों से सम्पन्न और संगठन में अत्यन्त कुशल थे। धीरे-धीरे उन्होंने संस्था के गठन को बड़ा दृढ़ कर लिया। उनको हम लोग आदर्श और महान चरित्र के धनी व्यक्ति के रूप में देखते थे। उनके चेहरे पर सज्जनता के साथ-साथ साहस, शौर्य और आत्मसम्मान का अपूर्व भाव स्पष्ट अंकित दीखता था जैसा कि बिरले ही लोगों में शायद मिल सके। देशभक्ति की प्रखर लौ क्रान्तिपथ को पाकर प्रज्वलित हो उठी और उन्होंने मेरी गिरफ्तारी के बाद भी क्रान्ति की आग को प्रदीप्त बनाए रखा।

मेरी गिरफ्तारी सन् 1926 के दिसम्बर में हुई। गौहाटी कांग्रेस से लौटकर भागलपुर आया ही था कि पुलिस तलाशी लेने घर पर आ पहुँची। कमरे में तलाशी ली। मैंने अपने को विनय कुमार घोष ही सिद्ध किया। भागलपुर जेल में भी अपने को इसी नाम से बताता रहा और शचीन्द्रनाथ बख़्शी होने से इन्कार करता रहा।

मेरे जेल जाने पर मोहित ने भागलपुर का संगठन सँभाल लिया। सन् 1929-30 की बात है—भागलपुर षड्यन्त्र केस में मोहित अधिकारी पकड़े गये। मुझसे न तो फिर भेंट हो पायी, न मुझे पूरे समाचार मिल पाते थे। जेल में अखबार भी मुझे पढ़ने को नहीं मिलता था। बताते थे कि मोहित अधिकारी ने किसी मोटर-डकैती का नेतृत्व किया था।

मोहित अधिकारी को आजन्म कालेपानी की सज़ा मिली। उन्हें अण्डमान की जेल में रखा गया। उनके साथ बंगाल और पंजाब के और भी क्रान्तिकारी थे। जेल-जीवन में भी मोहित और उनके साथी क्रान्तिकारियों का स्वाभिमान और तेजी से मुखरित हो उठा। वहाँ उन्होंने अन्याय और अत्याचारों के खिलाफ हर प्रकार का विरोध किया, भूख हड़ताल तक की, और कारागार में भी सिर झुकाकर नहीं चले।

पहलवान जैसा पुष्ट शरीर भी जेल जीवन की यातनाओं से छीजने लगा। इतने पर भी वह साथियों को कुश्ती सिखाते थे। वे क्रान्तिकारियों को कुश्ती सीखना बहुत आवश्यक मानते थे। सोलह-सत्रह क्रान्तिकारियों को नित्य वे जेल-अखाड़े में कुश्ती लड़ाया करते थे। उनकी देश की स्वाधीनता की लगन को कारागार की बेड़ियाँ कभी बाँध नहीं पाईं। प्रज्वलित दीपशिखा-सी देह जलती रही, प्रकाश देती रही और उस तेजस्वी जीवन ने जलते हुए अपने को मिटा दिया। शरीर खप गया और डाक्टरों ने बताया कि टी.बी. हो गई है। कैसी थी वह टी.बी., जिसने एक महीने में ही मोहित अधिकारी को कारागार ही नहीं, संसार के भौतिक बन्धनों से मुक्त कर दिया।

मोहित अपनी मोहन स्मृति छोड़कर चले गए। बटुकेश्वर दत्त, भगत सिंह के सब साथी, चटगाँव आरमरी तथा बंगाल के अन्य सब क्रान्तिकारी शोकसन्तप्त थे। सब मोहित के उदात्त चरित्र और श्रेष्ठ व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थे। आज से 42 साल पहले मैंने उन्हें देखा था, लेकिन आज उनका उदात्त और सौम्य, तेजोमय मुख उसी प्रकार मेरे सामने उज्ज्वल दिखाई देता है। उनकी आवाज कितनी मधुर थी, साथ ही प्रभावशाली भी। जब वे गाते थे "एक निरंजन पुरुष पुरातन..." तो सभी साथी मन्त्रमुग्ध हो उठते थे।

क्या इन क्रान्तिकारियों, इतने उच्च कोटि के महामानवों को हम भुला देंगे? क्या उनके जीवन में कोई ऐसी प्रकाश की किरण नहीं, जो हमारे जीवन को, राष्ट्र-जीवन की भटकती नौका को दिशा दे सके? अब जबकि बहुत कम साथी बाकी बचे हैं, मेरे हृदय में रह-रहकर उनकी स्मृतियाँ जाग उठती हैं और वायुमण्डल में ये प्रश्न-चिन्ह बनकर छा उठती हैं—क्या देश का तरुण रक्त इनका जवाब दे सकेगा?

अतुलनीय क्रान्तिकारी व सगंठनकर्त्ता

शचीन्द्रनाथ सान्याल

जिन्हें दो बार कालापानी की सज़ा हुई थी

कहा जाता है कि 'ओब्जेक्टिव सिचुएशन' इन्सान को और समाज को बनाता है एवं व्यक्ति की देन ओब्जेक्टिव सिचुएशन के मुकाबले में गौण है। लेकिन हम जब इतिहास का विश्लेषण करते हैं तब हम देखते हैं कि कभी-कभी व्यक्ति विशेष का व्यक्तित्व इतना उभर आया है कि वह अपने जमाने में बहुत ऊँचा उठ गया है। ऐसे ही व्यक्ति थे मनीषी कार्ल मार्क्स जिन्होंने समाजवाद की फिलॉसफी का दिग्दर्शन कराया। लेनिन ऐसे ही एक आदमी थे जिन्होंने उस समाजवाद दर्शन को रूस में कामयाब कर दिखाया। यह भी एक ऐतिहासिक सत्य है कि उनके बाद जोसेफ स्टैलिन ने रूस को एक सूत्र में बाँधकर कठोर डिक्टेटरशिप के अधीन रखकर समाजवादी क्रान्ति को सफल बनाया और धीरे-धीरे रूस को एक मिलिटरी और इण्डस्ट्रीयल शक्ति में दुनिया में प्रथम स्थान पर ला बैठाया।

मेरे कहने का मतलब है कि समष्टि की प्रधानता होते हुए भी व्यक्ति विशेष का चरित्र उभरकर सामने आता ही रहता है जिनकी प्रधानता स्वीकार करनी ही पड़ती है।

उत्तर भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास में बीसवीं सदी के द्वितीय और तृतीय दशकों में जिनका व्यक्तित्व सामने आ जाता है वह हैं शचीन्द्रनाथ सान्याल। सन् 1912 में आप जब बनारस के बंगाली टोला स्कूल में मैट्रिक क्लास में पढ़ते थे तभी आपने 'अनुशीलन समिति' नाम से एक नवजवानों की संस्था खोली जिसमें कसरत, जिमनास्टिक आदि के साथ-साथ वाद-विवाद और राजनैतिक विषयों पर चर्चा हुआ करती थी। कुछ दिनों बाद पुलिस के ऐतराज़ करने पर

आपने इसका नाम बदलकर 'यंग मैन्स एसोसिएशन' रख दिया। जब रास बिहारी बोस के नेतृत्व में उत्तर भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन शुरू हुआ, आप भी उसमें शरीक हो गए और काफी सरगर्मी से काम करने लग गए। धीरे-धीरे आप रास बिहारी बोस के दाहिने हाथ हो गए और पंजाब की छावनियों में घूम-घूमकर हिन्दुस्तानी पलटन में क्रान्ति का प्रचार किया। इन प्रचेष्टाओं में गदर पार्टी के नेताओं—करतार सिंह सराभा, विष्णु गणेश पिंगले आदि नेताओं और कार्यकर्ताओं के सम्पर्क में आए और सबको एक सूत्र में बाँधकर एक विशाल पैमाने पर क्रान्ति की तैयारी की।

इन दिनों रास बिहारी बोस देहरादून से फरार हो चुके थे और सालभर से ऊपर बनारस में फरारी हालत में रहे। उन दिनों रास बिहारी बोस किसी से नहीं मिलते थे, न कहीं बनारस छोड़कर बाहर जाते थे। उनका सारा काम शचीन्द्र नाथ सान्याल ही करते थे। सन् 1915 के फरवरी महीने में जब एक मुखबिर के विश्वासघात से सारा भेद खुल गया और पंजाब की छावनियों में धर-पकड़ होने लगी और षड्यन्त्र के मुकदमों का ताँता लग गया तब रास बिहारी बोस ने हिन्दुस्तान छोड़कर बाहर जाने का निश्चय किया। कलकत्ता जाकर कवि गुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर के भतीजे प्रियनाथ टैगोर बनकर कलकत्ता से एक जापानी जहाज पर सवार होकर जापान चले गये। शचीन्द्रनाथ सान्याल अन्त तक, जहाज के रवाना हो जाने के समय तक रास बिहारी बोस के साथ रहे।

बाद में बनारस षड्यन्त्र मामले में नेता के रूप में आपको आजन्म काले पानी की सज़ा मिली और आप सन् 1916 के शुरू में अण्डमान भेज दिए गये।

आपका जन्म कलकत्ता में 3 जून सन् 1893 में हुआ था। आप बचपन से ही पढ़ने-लिखने में और बुद्धि में तेज़ थे और कम उम्र में ही क्रान्तिकारी बन गए थे। क्रान्तिकारी कामों में 24 घण्टा देने के लिए आपने इण्टरमीडिएट से ही कालेज छोड़ा और बड़ी ही लगन से क्रान्तिकारी क्रियाकलापों में जुट गये। उमर में आप कैनेडीयन सिख और अमेरिका के गदर पार्टी वालों के सामने बच्चे ही थे, लेकिन शचीन्द्रनाथ सान्याल अपनी प्रखर बुद्धि, कुछ तजुर्बा तथा समझदारी और सूझबूझ के बल पर उन सबका नेतृत्व करते रहे। अण्डमान के सेल्यूलर जेल में बारीन्द्र कुमार घोष, उपेन्द्र बनर्जी, सावरकर बन्धुओं तथा बंगाल के तमाम क्रान्तिकारियों से आपका परिचय हुआ। लेखक और बुद्धिवादी होने के कारण विनायक दामोदर सावरकर, बारीन्द्र घोष तथा उपेन्द्रनाथ बनर्जी आपको बहुत स्नेह करते थे। यह तीनों क्रान्तिकारी नेता बुद्धिजीवी थे और ऊँचे दर्जे के लेखक भी थे।

पहला महायुद्ध समाप्त होने के बाद जब बंगाल के क्रान्तिकारी बारीन्द्र घोष

आदि अण्डमान से छोड़ दिये गए तब देशबन्धु सी0 आर0 दास की कोशिश से सन् 1920 में शचीन्द्रनाथ सान्याल भी रिहा कर दिये गए। रिहाई के बाद आपने देशबन्धु दास के 'नारायण' मासिक पत्रिका में धारावाहिक रूप से 'बन्दी जीवन' नाम से अपनी आत्मकथा और उत्तर भारत में सशस्त्र क्रान्ति की प्रचेष्टा की और अप्रकाशित इतिहास का विवरण लिखा। 'बन्दी जीवन' उत्तर भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन का एक अनमोल ग्रन्थ है।

सन् 1921 में आपने विवाह कर लिया और इलाहाबाद आकर बस गए। महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन के असफल हो जाने के बाद आप फिर क्रान्तिकारी संगठन में जुट गये और 1923 तक सारे यू0पी0 में एक बहुत बड़ा संगठन कर डाला। सन् 1924 में मेरठ के विष्णु शरण दुबलिश, शाहजहाँपुर के रामप्रसाद बिस्मिल, कानपुर के सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य तथा उनका दल और बनारस के अनुशीलन पार्टी के शचीन्द्र नाथ बख्शी, राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी आदि व बनारस के दल को एक सूत्र में बाँधकर 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' के नाम से बाकायदा एक नयी संस्था बनाने का श्रेय आप ही को है।

पहले बनारस का दल बंगाल के अनुशीलन पार्टी की देखरेख में बढ़ उठा था, लेकिन जब बंगाल के नेताओं ने तथा बनारस के नौजवानों ने समझा कि उत्तर भारत में बड़े पैमाने पर संगठन शचीन्द्र नाथ सान्याल के नेतृत्व के बिना चल ही नहीं सकता तब बंगालवालों ने भी उनका नेतृत्व स्वीकार कर लिया और उत्तर भारत में शचीन्द्रनाथ सान्याल के नेतृत्व में 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' यानी भारतीय प्रजातन्त्र संस्था का काम बड़े अच्छे ढंग से चल उठा। इस संस्था का उद्देश्य और नियमावली जो कुछ बना, जो कुछ लिखा गया, वह सब अकेले शचीन्द्रनाथ सान्याल की लेखनी से हुआ और उन्होंने उसे गुप्त रूप से छपवा भी लिया। हम सब क्रान्तिकारियों ने उसे सर्वसम्मति से मान लिया। शचीन्द्रनाथ सान्याल ने यू0पी0 में एक प्रॅविन्शियल काउन्सिल बनाई और इस काउन्सिल के मेम्बरों को जिम्मेदारी सौंपकर बंगाल में काम करने की सोची। सन् 1924 की गर्मियों में उन्होंने बनारस डिवीज़न का चार्ज राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी को सौंपकर बनारस से जोगेश चन्द्र चटर्जी को हटाकर कानपुर भेजा। कानपुर में तब तक शचीन्द्रनाथ सान्याल के शिष्य सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य ने नौजवानों का अच्छा-खासा संगठन बना लिया था। इनमें अजय, विजय और बटू तीन तथा अन्य अनेक नौजवान थे जिनमें अजय घोष बाद में कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेटरी हुए थे और लगातार 10 वर्षों तक रहे। विजय कुमार सिन्हा को लाहौर षड्यन्त्र केस में भगत सिंह के

साथ आजन्म काले पानी की सज़ा हुई और तीसरे बटुकेश्वर दत्त, भगत सिंह के साथ एसेम्बली में बम फेंककर भारत प्रसिद्ध हो गये।

शचीन्द्रनाथ सान्याल ने बंगाल जाने से पहले रामप्रसाद बिस्मिल को सूबे भर के वायलेंस डिपार्टमेंट का इंचार्ज बनाया था तथा उनके अपने बनाये हुए जितने क्रान्तिकारी केन्द्र थे, सबसे जोगेश चटर्जी का परिचय करा दिया था। मैं उन दिनों लखनऊ में संगठन कर रहा था। सान्याल बाबू मुझसे भी मिले और मुझे लखनऊ के संगठन के कार्य से यथेष्ट सन्तुष्ट न देख मुझे झाँसी जाने को कहा और झाँसी डिवीज़न का चार्ज मुझे दिया।

बंगाल जाने से पहले सान्याल बाबू लाहौर में सरदार भगत सिंह को अनुप्रेरित कर आये थे तथा भगत सिंह को कानपुर लाये थे। यही सरदार भगत सिंह बाद के क्रान्तिकारियों में सबसे ज्यादा प्रसिद्ध हुए। जिन दिनों शचीन्द्र सान्याल बंगाल में काम करने गए उन दिनों बंगाल सरकार बंगाल के क्रान्तिकारी नेताओं को रेगूलेशन 3 के मुताबिक नज़रबन्द कर रही थी और आपका उधर जाने का पता चलने पर आपको भी वहाँ की पुलिस बहुत ढूँढ़ती रही। आपने वहाँ भूमिगत रहकर संगठनात्मक बहुत काम किये और थोड़े समय में कलकत्ता के कॉलेज स्टूडेंटस् को चुन-चुनकर रिक्रूट करके एक नया मजबूत संगठन बना लिया। आपने बनारस के मेरे एक शिष्य को उन दिनों फ्रान्स व जर्मनी भेजकर हथियारों की बड़े पैमाने पर आमदनी करने की पूरी व्यवस्था भी कर ली। कलकत्ता में आपको जो अच्छे-अच्छे नौजवान मिले उनमें यतीन्द्र नाथ दास भी थे जिन्होंने बाद में लाहौर षड्यन्त्र केस के मुकदमे के दौरान 64 दिनों की भूख हड़ताल कर अपने प्राण विसर्जित कर दिये थे।

शचीन्द्रनाथ सान्याल में नौजवान रिक्रूट करने तथा उन्हें ऊँचे दर्जे की अनुप्रेरणा देने की अद्‌भुत प्रतिभा और क्षमता थी, ऐसा मैंने और किसी में नहीं पाया। कम समय के अन्दर जितने बड़े-बड़े क्रान्तिकारी उन्होंने बनाये, ऐसा और किसी ने नहीं किया।

सन् 1925 के जनवरी महीने में आपने 'दी रिवोल्यूशनरी' नाम से एक पर्चा छपाया जो उत्तर भारत में लाहौर से ढाका तक सब शहरों में एक ही दिन एक साथ बाँटा गया। उस पर्चे की शुरुआत ऐसी थी—Chaos and confusion is necessary for the birth of a new star and the birth of child is accompanied with agony and pain., जैसे एक नया ग्रह बनने से पहले बहुत बड़ा प्रलय का होना लाज़मी है, जैसे एक बच्चे के पैदा होने के समय दर्द और दुःख का होना

स्वाभाविक है, वैसे ही किसी देश के परिवर्तन काल में तथा नया युग लाने के लिए क्रान्ति व उथल-पुथल होना स्वाभाविक है। इस लम्बे पर्चे में अहिंसा का मजाक उड़ाया गया था तथा आने वाली सशस्त्र क्रान्ति का दिग्दर्शन कराया गया था। पर्चा अंग्रेजी में बड़े ही विद्वत्तापूर्ण ढंग से लिखा गया था तथा छपाइ आदि भी सुन्दर थी। इस पर्चे के प्रचार के बाद ब्रिटिश सरकार ने शचीन्द्रनाथ सान्याल को बहुत ज्यादा ढूँढ़ा और आखिरकार दो महीने बाद उन्हें बंगाल में पकड़ लिया। उनके ऊपर राजद्रोह का मुकदमा चला और राजद्रोह के जुर्म में ताजीराते हिन्द की दफा 124-ए में उन्हें 18 सितम्बर सन् 1925 को दो साल की सज़ा हुई। इस पर्चे के शाया करने के दिनों में उन्होंने एक और पर्चा बांग्ला में छपवाया था—'देशबासीर प्रति निवेदन'।

जब बंगाल में उनके ऊपर मुकदमा चल रहा था, काकोरी से लखनऊ की ओर आने वाली पैसेंजर ट्रेन 9 अगस्त सन् 1925 की शाम को रोककर सरकारी खजाना लूट लिया गया। इस सनसनीखेज घटना के बाद लखनऊ में 'काकोरी षड्यन्त्र केस' का प्रसिद्ध क्रान्तिकारी मुकदमा चला और आप भी उसमें नेता के रूप में लाये गए। उस मुकदमे में सरकार ने क्रान्तिकारियों को फँसाने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी। सरकारी वकील को फीस में लाखों रुपये दिए गये। स्पेशल मजिस्ट्रेट तथा स्पेशल सेशन जज नियुक्त किए गये। डेढ़ साल मुकदमा चलने के बाद स्पेशल जज ए. हैमिल्टन ने दफा 121 ए तथा 120 बी में आपको आजन्म कालेपानी की सज़ा दी। जज ने आपके साथ उक्त दफा के साथ 396 डकैती में रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी तथा रोशन सिंह को फाँसी की सज़ा दी। फाँसी वालों को छोड़कर आपको सबसे ज्यादा सज़ा दी गई थी। मन्मथनाथ गुप्त को 14 साल, राजकुमार सिन्हा, रामकृष्ण खत्री, मुकुन्दी लाल, गोबिन्दचरण कार तथा जोगेश चटर्जी को 10-10 साल की सज़ा दी गई थी। सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य तथा विष्णुशरण दुबलिश को सात-सात साल एवं राम दुलारे त्रिवेदी, प्रेमकृष्ण खन्ना, भूपेन्द्र सान्याल (शचीन्द्र सान्याल के सबसे छोटे भाई) रामनाथ पाण्डे, प्रणवेश चटर्जी आदि को 5-5 साल की सज़ा दी गई। अपील में कई एक की सज़ाएँ बढ़ाई गयी थीं। सप्लीमेंटरी कांसपिरेसी केस में अशफाकउल्ला खाँ को फाँसी की सज़ा दी गई थी तथा शचीन्द्रनाथ बख्शी को (मुझको) आजन्म कालेपानी की सज़ा दी गई। शचीन्द्रनाथ सान्याल तथा मैंने अपील नहीं की थी।

सज़ा मिलने के बाद शचीन्द्रनाथ सान्याल ने लखनऊ सेण्ट्रल जेल से भागने की कोशिश की। तुलसीदास की रामायण के जिल्द के अन्दर लोहा काटने की

आरी उन्होंने मँगाई और उससे अपने बैरक के जंगले का एक सींखचा काट लिया। जल्दबाजी करके एक कैदी के पहले ही निकल जाने से भेद खुल गया और सान्याल बाबू के ऊपर कड़ाई बरती जाने लगी।

इसके बाद उन्होंने जेल-जीवन पढ़ने-लिखने में बिताया और जेल के झगड़ों से कोई सरोकार नहीं रखा। उनके विचार और ख्यालात में धर्म का पुट आ गया था तथा उन्होंने बहुत सारे पाण्डित्यपूर्ण धर्म सम्बन्धी लेख लिखे थे। सन् 1930 में हम सब बी क्लास में स्थानान्तरित कर दिए गये थे और सन् 1936 के आखिर में नैनी सेण्ट्रल जेल में जब हम सब एक 'रिवोल्यूशनरी बैरक' में इकट्ठा हुए तभी मुझसे शचीन्द्रनाथ सान्याल से फिर मुलाकात हुई लगभग 12 साल बाद। बड़े ही नियमपूर्वक उन्हें जीवन बिताते मैंने देखा। वह लेख खूब लिखते थे तथा डेक टेनिस, वालीबाल, बैडमिण्टन आदि आउटडोर गेम्स में भी खूब भाग लिया करते थे। तन्दुरुस्ती भी आपकी अच्छी थी और आप अपनी असली उम्र से कम जँचते थे।

सन् 1937 के सितम्बर में रिहा होने के बाद तथा 'काकोरी डिमांस्ट्रेशन' के तूफानी दौरे के बाद शचीन्द्रनाथ सान्याल ने लेखनी को अपना पेशा बना लिया और खूब लिखने लगे। उनकी पत्नी और उनका पुत्र उनके साथ रहते थे। उनको गृहस्थी का खर्चा भी चलाना था और वे दिन-रात बैठे लिखा करते थे। मुझे याद है कि मैं लखनऊ में उन दिनों जब कभी उनसे मिलने जाया करता था, उनकी पत्नी शिकायत करती थी—इन्हें डाइबिटीज़ हो गया है। डाक्टर ने दो-चार मील टहलने को कहा है, लेकिन यह लिखना छोड़कर उठते ही नहीं!

मैं उन्हें करीब-करीब जबरदस्ती घुमाने के लिए ले जाया जाता था। शचीन्द्र नाथ सान्याल बुद्धिवादी तथा विद्वान थे। उनका अध्ययन गहन विषयों पर खूब गहराई से हुआ करता था। हिन्दू दर्शन विशेषकर वेदान्त दर्शन पर उन्होंने काफी अध्ययन किया था और खोज की थी। बनारस से प्रकाशित भारतीय साधु समाज के मुखपत्र एक हिन्दी दैनिक का सम्पादन उन्होंने करीब डेढ़ साल तक किया था। उनका लिखा 'बन्दी जीवन' तीन भाग एक साथ हाल ही में प्रकाशित हुआ है। सन् 1943 में मृत्यु से पहले 'बन्दी जीवन' का तीसरा भाग वह लिख चुके थे। उनकी लिखी हुई एक और पुस्तक जिसका शीर्षक 'वंशानुक्रम विज्ञान' है अभी हाल में दिल्ली के प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स ने प्रकाशित की है। पुस्तक बहुत खोज और छानबीन के बाद लिखी गयी है।

अण्डमान से छूटकर आने के बाद उन्होंने पहले पहल बांग्ला भाषा में 'बन्दी

जीवन' लिखा था। काकोरी केस में सज़ा काटते वक्त तथा छूटने के बाद उन्होंने जो कुछ लिखा, सब हिन्दी में ही लिखा। जेल में उन्होंने बहुत कुछ लिखा वह सब कुछ हिन्दी में ही था। एक बार हिन्दी शुरू करने पर फिर हिन्दी में ही लिखते रहे।

काकोरी केस के सब साथी मन्मथनाथ गुप्त, राजकुमार सिन्हा, रामकृष्ण खत्री, रामदुलारे त्रिवेदी, प्रेमकृष्ण खन्ना तथा सुरेश चन्द्र भट्टाचार्य, जोगेश चटर्जी सब उन्हें दादा कहते थे, सबके दादा थे वह—सबके शचीन दादा। लेकिन इस लेख के लेखक को कभी शचीन्द्र सान्याल से बड़े भाई का स्नेह नहीं मिला। मुझे इस बात का दुःख रह गया कि उन्होंने मुझको वह गौरव कभी नहीं दिया। उनके मरने के दो-तीन महीने पहले जब मैं उनसे मिला था तब भी उन्होंने मुझको बख्शी बाबू कहकर पुकारा था। शायद इसका कारण, मैं समझता हूँ, यह था कि उनका और मेरा कुछ सैद्धान्तिक विरोध का कभी भी रफा-दफा नहीं हुआ। वह थे पूरे ईश्वर पर भरोसा करने वाले और धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति और मैं था निरीश्वरवादी नास्तिक—यह प्रचार करने वाला कि मनुष्य-कल्पना ने ही ईश्वर को बनाया है और मानव-कल्पना के बाहर कोई ईश्वर है ही नहीं। वैसे तो धीरे-धीरे सभी साथी मेरे ख्यालात के हो गये थे लेकिन इससे सान्याल बाबू को कोई फरक नहीं पड़ा। वह सबसे बहस करते रहे और सबको हमेशा कनविन्स करने की कोशिश भी किया करते थे।

लेकिन धर्म तथा ईश्वर के बारे में कभी उन्होंने मुझको कनविन्स करने की चेष्टा नहीं की। इस विरोधी ख्यालात के शायद मुझे ही पुरोधा वह मानने लगे हों और शायद इसीलिए ही मुझसे हमेशा यह दूरत्व उन्होंने कायम रखा—जिसे मैं अपना दुर्भाग्य ही समझता हूँ।

शचीन्द्रनाथ सान्याल का क्रान्तिकारी जीवन अतुलनीय रहा। भारतवर्ष के इतिहास में किसी क्रान्तिकारी को इनके माफिक एक ही जीवन-काल में विभिन्न समय अलग अलग मुकदमे में आजन्म काले पानी की सज़ा दो बार और किसी को नहीं मिली है। सिर्फ अकेले आप ही थे जिनको एक बार आजन्म काले पानी की सज़ा मिली, अण्डमान गए, सज़ा काट कर छूटे और फिर से दोबारा क्रान्तिकारी संगठन किये और फिर दूसरे मुकदमे में आजन्म काले पानी की सज़ा मिली। इस दूसरे काले पानी की सज़ा काटकर छूटने के बाद भी आप बैठे नहीं। द्वितीय महायुद्ध शुरू होने के साथ-साथ आपने फिर क्रान्तिकारी संगठन शुरू कर दिया और आप नज़रबन्द कर दिए गये। जेल में टी0बी0 हो गई। डायबिटीज़ था ही। बचने की

कोई उम्मीद न देखकर अंग्रेज सरकार ने उन्हें जेल से रिहा कर दिया। लेकिन रिहा होने पर भी स्थिति सुधरी नहीं और वह थोड़े दिनों के बाद सन् 1943 के फरवरी महीने में एक दिन चल बसे।

उस दिन भारतमाता ने एक ऐसा बेटा खोया जो एक महान क्रान्तिकारी ही नहीं था, अद्भुत प्रतिभासम्पन्न तथा अपूर्व क्षमता रखने वाला संगठनकर्ता ही नहीं, बल्कि एक ऐसा अतुलनीय क्रान्तिकारी था जिसकी बराबरी की मिसाल दूसरा कोई भारतवर्ष में पैदा नहीं हुआ।

और जहाँ तक मेरी जानकारी है, मैं समझता हूँ कि विदेशों में भी, आयरिश, रूस या चीन में भी ऐसा कोई क्रान्तिकारी पैदा नहीं हुआ जिन्होंने एक जीवन में शचीन्द्रनाथ सान्याल जैसा एक बार आजन्म काले पानी की सज़ा काटकर छूटे हों और छूटने के बाद फिर से जोरदार क्रान्तिकारी संगठन का कार्य किया हो और जिसके फलस्वरूप फिर से दोबारा आजन्म कैद की सज़ा पायी हो और उसे काटा हो।

ऐसी एक महान आत्मा को आज देश भूल गया है।

श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी ने अपने लेख में कई स्थानों पर अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है, उनकी अपनी शैली को बनाये रखने हेतु उन्हें परिवर्तित नहीं किया गया है।



प्रख्यात क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल

जिन्हें दो बार काला पानी की सज़ा मिली थी। प्रथम बार बनारस षड्यन्त्र केस में तथा पुनः काकोरी षड्यन्त्र केस में

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

सन् 1925 में 'काकोरी केस' में फरार होने से पहले स्वर्गीय बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से मेरा व्यक्तिगत परिचय नहीं था। मेरा कर्मजीवन और क्रान्तिकारी कार्यक्षेत्र ज्यादातर बनारस, लखनऊ, शाहजहाँपुर और झाँसी रहा। कानपुर भी जाया करता था और स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थी जी से भी परिचय था। वह क्रान्तिकारियों से सहानुभूति रखते थे। उस वक्त तक 'नवीन' जी राजनैतिक जीवन में सक्रिय भाग नहीं लेते रहे और अगर लेते भी रहे हों तो 'प्रोमिनेंट' नहीं थे और उनके बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं थी। हाँ, एक कवि और लेखक के रूप में उनका नाम मैंने सुन रखा था।

फिर मैंने, जेल में आजन्म कारावास की सज़ा काटते हुए गणेश शंकर विद्यार्थी जी का कानपुर में साम्प्रदायिक तूफान के दिनों में शहीद होने की खबर पढ़ी। धीरे-धीरे यह भी मालूम हो गया कि कानपुर में विद्यार्थी जी का रिक्त स्थान 'नवीन' जी ने ले लिया। 'प्रताप' के सम्पादन व सार्वजनिक जीवन के समस्त कार्यों की जिम्मेदारियाँ उन्होंने सँभाल लीं और बड़ी खूबी के साथ सँभाल रहे हैं। जेल से छूटने के बाद बड़े ही स्पेक्टेक्युलर कौतुकपूर्ण ढंग से उनसे मेरा परिचय हुआ।

सन् 1937 के आम चुनाव में कांग्रेस को बहुमत मिला और संयुक्त प्रान्त में कांग्रेस की पहली सरकार बनी और हम सब काकोरी केस के कैदी, जिन्हें लम्बी-लम्बी सज़ाएँ मिली थीं और तब तक जेल में थे, रिहा हुए। लोगों में बहुत उत्साह था। काकोरी कैदियों का इलाहाबाद में बड़ा ही शाही स्वागत हुआ। दो दिन इलाहाबाद रहकर हम कानपुर आ रहे थे और कानपुर में बड़े ही शानदार और अभूतपूर्व स्वागत की तैयारियाँ हो रही थीं।

अंग्रेज गवर्नर इस स्वागत, इस प्रसिद्ध 'काकोरी प्रदर्शन' के खिलाफ था। उन्होंने इस प्रान्त के मुख्यमन्त्री गोविन्द बल्लभ पन्त को बुलाकर कहा—इसे बन्द

कीजिए। इस स्वागत और प्रदर्शन से हिंसा को तरजीह मिलेगी। पन्त जी कोशिश करने को राजी हो गये और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को टेलिफोन किया। 'नवीन' जी शहर कांग्रेस कमेटी के सभापति थे और उस स्वागत-व्यवस्था का नेतृत्व कर रहे थे। 'नवीन' जी स्वागत बन्द करने को राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा—व्यवस्था बहुत आगे बढ़ चुकी है, बन्द करने की ताकत किसी में नहीं। लोगों में अभूतपूर्व जोश और उत्साह है। कानपुर के नागरिक कांग्रेस को उखाड़ कर फेंक देंगे, अगर कांग्रेसी इसे बन्द कराने की कोशिश करेंगे। स्वागत तो होकर रहेगा। हाँ, हम कांग्रेसी कहीं के नहीं रहेंगे।

तब पन्त जी मान गए। और कानपुर रेलवे स्टेशन पर दिनभर सारे शहर का जलूस और आखिर में उसी स्वागत-सभा में 'नवीन' जी से मिला और फिर मुलाकात होती रही।

जेल से छूटने के लगभग एक माह पूर्व ही मेरा चालीस दिनों का अनशन समाप्त हुआ था। एक माह में ठीक से मैं स्वस्थ नहीं हो पाया था। कड़ी धूप और खुली मोटर में दोपहर एक बजे से शाम छः बजे तक जुलूस में शरीक होकर और छः घण्टे लगातार स्ट्रेन से मुझे बुखार चढ़ आया था और सिर में असहनीय दर्द हो रहा था। अतः उस सभा में मैंने न बोलने का निश्चय किया। मंच पर उस सभा के सभापति वयोवृद्ध नेता डा0 मुरारीलाल के गोद में सर रखकर लेटा हुआ था। सभा का संचालन कर रहे थे—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'। वह खड़े ही रहे, वक्ताओं का एक-एक कर परिचय कराते और परिचय कराने के बाद उनके पीछे खड़े हो जाते।

जनता की भीड़ पचहत्तर-अस्सी हजार से ऊपर ही होगी और इतनी बड़ी जनता को पहली बार सम्बोधित करते हुए मेरे एक साथी सन्तुलन खो बैठे और बहुत ही स्पष्ट शब्दों में हिंसा का आह्वान कर बैठे। उन्होंने कहा—हम रिहा हुए हैं, लेकिन लाहौर केस वाले भगत सिंह के साथी और बंगाल के क्रान्तिकारी सैकड़ों की तादाद में अभी भी अण्डमान के सेल्युलर जेल की कोठरियों में बन्द हैं। पंजाब और बंगाल की सरकार उन्हें नहीं छोड़ना चाहती है। अतः अगर कोई नौजवान पिस्तौल लेकर बंगाल के मुख्यमन्त्री फजलुल हक को गोली मार दे तो बहुत बड़ा काम करेगा और उसी तरह कोई नौजवान पंजाब के मुख्यमन्त्री को भी...इत्यादि।

साफ शब्दों में राजनैतिक कत्ल और खून का प्रोत्साहन था, लेकिन जनता को यह बातें बहुत अच्छी लगीं। नई बातें थीं, नये ढंग से कहा गया था, जिसे

जनता ने सार्वजनिक मंच से कभी नहीं सुना था। अतः खूब पसन्द आईं उन्हें और तालियाँ भी खूब बजीं। और इससे कांग्रेस खेमे में तहलका मच गया। सब कांग्रेसी कानाफूसी करने लगे—मंच के चारों तरफ। सब भौंचक्के रह गये। 'नवीन' जी दौड़े-दौड़े वक्ता मंच से उतरकर सभापति मंच पर आये और मुझसे कहने लगे कि इसे आप 'काउण्टरएक्ट' कीजिए। आपको बोलना ही होगा। ऐसे हिंसा का प्रचार करना आपका प्रोग्राम तो नहीं था।

सभापति डा० मुरारीलाल जी नाराज हुए—बख्शी जी को मैं बोलने नहीं दूँगा। टेम्परेचर है 103 के करीब, ब्लडप्रेशर बहुत हाई है—वह इस हालत में नहीं हैं कि बोलें।

तब 'नवीन' जी हमारे दल के सबसे बड़े नेता शचीन्द्रनाथ सान्याल से चिरौरी करने लगे—भाई, आप लोगों में से ही कोई इस स्पीच को 'काउण्टरएक्ट' या 'कांट्राडिक्ट' कर सकता है। आप लोग अब सम्भालें। सान्याल बाबू राजी नहीं हुए। हमारे अन्य साथी वक्ता नहीं थे। आखिर मुझे ही राजी होना पड़ा।

अन्य कोई चारा न देखकर डा0 मुरारीलाल गम्भीर हो गये और फिर दोनों ने, बालकृष्ण जी और डाक्टर साहब ने मुझसे कहा—बख्शी जी, आप ही सम्भालिए। पाँच मिनट बोलिए और स्थिति को सम्भाल लीजिए।

मैं उठा। बालकृष्ण जी के हाथ से एक गिलास लेकर पानी पीया। उनके साथ धीरे-धीरे चलकर तीन-चार सीढ़ी चढ़कर लाउडस्पीकर के सामने जाकर खड़ा हो गया।

चारों तरफ से जय-जयकार होने लगा। मैंने चारों ओर घूमकर देखा—जनता की अभूतपूर्व भीड़। इतनी बड़ी सभा के सामने खड़े होने का व सम्बोधित करने का जीवन में यह पहला मौका था। बालकृष्ण जी मेरे पास सटे हुए खड़े थे। मैंने उनके कान में कहा—कांट्राडिक्ट नहीं करूँगा काउंटरएक्ट कर दूँगा। ठीक ही तो कहा है साथी ने।

बालकृष्ण जी ने कहा—काउंटरएक्ट ही सही, लेकिन इस वक्त अपनी सारी इज्जत, कांग्रेस की इज्जत—बस, आपके हाथ में है। उन्होंने यह कहते हुए लाउडस्पीकर को अपने हाथ से ढक लिया था।

मेरे लिए लाउडस्पीकर के सामने बोलने का यह दूसरा मौका था। पहला इलाहाबाद में—सिर्फ दो दिन पहले की बात थी।

मैंने फिर उनसे कहा—दो मिनट मुझे समय दीजिए।

उन्होंने कहा—दो नहीं, पाँच मिनट समय लीजिए और वह मेरा परिचय देने

लगे। बड़े ही मार्मिक शब्दों में उन्होंने मेरा परिचय दिया। भाषा थी कवितामय, भाव था गम्भीर अनुभूतिपूर्ण और इसी बीच पचहत्तर-अस्सी हजार भीड़ के सामने बोलने का मैंने शक्ति-संचय कर लिया।

मैं दस-बारह मिनट बोला। भाषण अच्छा ही हुआ। अपने साथी के सम्बोधन का उल्लेख भी न करके मैंने जन-जागृति का वर्णन किया। रिप-भ्यान-विंकल बीस साल सो कर जब उठा तब दुनिया में परिवर्तन पाया, अमेरिका को इंग्लैण्ड की दासता से मुक्त पाया था। हम लोग भी जेल से आकर विराट परिवर्तन देख रहे हैं। जब हम जेल गये थे तब कांग्रेस के बड़े से बड़े नेता भी मुकम्मिल आज़ादी की बात सोच भी नहीं सकता था। हम क्रान्तिकारी पागल समझे जाते थे, लेकिन धीरे-धीरे जागृति हुई और आज 'इंकलाब-जिन्दाबाद' सारे देश के बच्चों की जबान पर है। आज आज़ादी की उमंग सभी के दिलों में है। अब हमें बम-पिस्तौल लेकर गुप्त रूप से क्रान्तिकारी संगठन व संस्था बनाना नहीं पड़ेगा। आज कांग्रेस, क्रान्तिकारी आन्दोलन हो गया है और आप हमारे साथ हैं। अब हमें काकोरी के माफिक डकैती नहीं डालनी पड़ेगी। अब आपको साथ लेकर हम (अंग्रेज) जिला कलेक्टर और पुलिस सुपरिंटेंडेंट से माँग करेंगे कि इस्तीफा दे दो।

मैंने इस ढंग से आने वाली जनक्रान्ति (Coming Mass Revolution) का खाका खींचा और जनता का रुझान व्यक्तिगत हिंसा की तरफ से खींचकर जनक्रान्ति की ओर कर दिया।

और मैं इस प्रयास में पूर्णरूप से सफल रहा।

जेल में यूरोपियन वार्डों में गोरे कैदियों के साथ-साथ पिछले छः-सात साल बिताने की वजह से मेरे भाषण में अंग्रेजी शब्दों का अम्बार रहा। बालकृष्ण जी ने अंग्रेजी शब्द बोलने के साथ-साथ उसकी हिन्दी परिभाषा धीरे से बोल देते रहे और मैं फिर अंग्रेजी के बाद उस हिन्दी को दुहरा देता रहा।

मेरे भाषण में, दस मिनट के भाषण में करीब नौ-दस बार तालियाँ बजीं। मेरे बैठने के साथ-साथ ओटोग्राफ चाहने वालों ने मुझे और साथियों को घेर लिया।

डाक्टर साहब मुझसे चिपट गये। बोले—इतना अच्छा बोलते हैं आप? और बालकृष्ण जी का क्या कहना। वह तो बहुत कृतज्ञ हुए।

और तब से मुझको बहुत मानने लग गये।

इसके बाद जब कभी मिले, खूब दिल खोलकर बातें करते थे, जैसे कोई बचपन का मित्र हो।

कुछ दिनों बाद सन् 1938 में जब हम फिर मिले और उन्हें मालूम हुआ

कि मैं शादी करने जा रहा था, तब उन्होंने मना किया और कहा—आप उच्चकोटि के ऑल इण्डिया लीडर हैं, शादी मत कीजिए, घर-गृहस्थी के चक्कर में आप पिस जाएँगे। आपकी राजनीति छूट जायगी, लीडरशिप खत्म हो जाएगी।

बात कुछ वैसी ही हुई।

फिर हिन्दुस्तान आज़ाद होने के बाद कई बार मिले। खासकर याद है वह दिन जब वह एम.पी. थे। दिल्ली में उन्होंने अपने घर पर मुझे सुबह की चाय पर बुलाया था। पहुँचते ही मैंने देखा कि वे कुछ सोच में हैं। चाय व नाश्ता आदि लेते समय रह-रहकर अन्यमनस्क हो जाते देखा। मैंने हँसी में कहा—क्या बात है? घर-गृहस्थी ले डूबा है क्या? घर-गृहस्थी के चक्कर में पिस गये?

उन्होंने उम्र हो जाने पर विवाह किया था। मैंने कहा—वृद्धस्थय तरुणी विशम्!

उनकी गम्भीरता टूट गई। वह हँसते-हँसते बोले—अब मैं कभी भी मिनिस्ट्री में नहीं लिया जाऊँगा। त्यागी (महावीर त्यागी) आ गया है। अब मेरा चांस समाप्त। मैंने उम्मीद कर रखी थी लेकिन पण्डित जी ने त्यागी को ले लिया। खैर, यह बात किसी से न कहिएगा।

कहने लायक बात थी भी नहीं, लेकिन अपने मन का दुःख उन्होंने मुझसे जाहिर कर ही दिया। उसी दिन सुबह के अखबारों में त्यागी जी का समाचार प्रकाशित हुआ था। फिर, हम दोनों महावीर त्यागी को बधाई देने साथ-साथ गए।

मुझसे 'नवीन' ज़ी हमेशा कहते रहते थे कि लिखिए। जब भी मुलाकात होती थी मुझे अपने बारे में, काकोरी काण्ड का इतिहास आदि लिखने के लिए प्रेरित करते रहते थे। कहते थे कि एक दिन अकस्मात दिवंगत हो जायेंगे, तब सब कुछ गुप्त ही रह जाएगा।

अब मैं लिख रहा हूँ। वह जीवित होते तो उन्हें अत्यधिक प्रसन्नता होती।

शिवप्रसाद गुप्त

उत्तर भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन में बनारस का स्थान हमेशा प्रमुख रहा है। इसका प्रधान कारण है—बनारस की भौगोलिक स्थिति। बंगभंग से जो आन्दोलन बंगाल से प्रारम्भ हुआ वह बाद में उग्र रूप लेकर स्थायी क्रान्तिकारी आन्दोलन का स्वरूप लेकर फलता-फूलता रहा। उस आन्दोलन की आँधी पूर्व से पश्चिम की ओर बहती रही। उस आँधी का झोंका बनारस में आकर रुकता रहा और पूर्व तथा पश्चिम का मिलन केन्द्र बनारस बड़ी खूबी के साथ अपना ऐतिहासिक कर्त्तव्य अदा करता रहा।

स्वर्गीय श्री शिवप्रसाद गुप्त बनारस की विभूति थे। ज्ञानमंडल प्रेस और 'आज' अखबार उन्हीं की देन हैं। 'काशी विद्यापीठ' की सफल स्थापना उनके द्वारा दिए दस लाख के दान से ही हो सकी थी। तत्पश्चात भारत माता मन्दिर का निर्माण भी उन्होंने ही करवाया था। ऐसे दानवीर शिप्रसाद जी बनारस के क्रान्तिकारियों के संस्पर्श से कैसे बच सकते थे?

बात कुछ यों थी।

सन् 1922 के वर्षा-काल में जब मैंने क्रान्तिकारी आन्दोलन में अपने को पूरी तौर से खपा देने का निश्चय किया, तब बनारस में ऐसे सिर्फ हम दो ही आदमी थे। एक मैं, दूसरे रासमोहन भट्टाचार्य। रासमोहन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थी थे और बंगाल के अनुशीलन पार्टी के एक नये रंगरूट थे, बस—नातजुर्बेकार। मैं उन दिनों बनारस के 'हेल्थ इम्प्रूविंग एसोसिएशन' का ज्वाइण्ट सेक्रेटरी था। एक नौजवान दल का नेता था, लेकिन नौजवानों का नेता, जिमनास्टिक क्लब का सेक्रेटरी होना और बात थी और अंग्रेजी राज में असहयोग आन्दोलन के बाद क्रान्तिकारी संगठन करना दूसरी बात थी। थोड़े ही दिनों में आटा-दाल का भाव मालूम हो गया।

नवचेतना के उतावलेपन में मैंने जिस-जिस नौजवान से संगठन की बात की थी उनमें से अधिकतर मुझसे कटने लगे, दूर भागने लगे और डरने लगे। शेष बचे हुए नौजवानों ने साफ कह दिया कि उन्हें डर लगता है और वे कुछ करने लायक नहीं हैं। कुछ ही दिनों में मेरी समझ में आ गया कि एप्रोच में कहीं कोई त्रुटि है। इन परिस्थितियों में मैंने महसूस किया कि अब हमें तजुर्बेकार व पुराने क्रान्तिकारियों के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता है जो दैनिक क्रिया-कलापों में हमें राह बतला सकें ताकि सगंठन आगे बढ़े। तदनुसार मैंने ढाका के अनुशीलन के नेता को पत्र लिखा।

एक दिन अनुशीलन के प्रतुल गाँगुली का पत्र आया। वे दस-बारह लोग गया कांग्रेस में सम्मिलित होकर बनारस आयेंगे व आठ-दस दिन रहेंगे। एक बिलकुल अलग मकान किराये पर लेकर रखने को लिखा। उनकी माताजी भी साथ हैं। गंगा किनारे हो तो बहुत अच्छा। खाना पकाने का इन्तजाम वे लोग खुद करेंगे। मुझको बहुत खुशी हुई और मैंने बहुत खोज कर केदार घाट के पास गंगा किनारे एक मकान किराये पर ले लिया। अपने घर से बरतन वगैरह लाकर, चूल्हा वगैरह बनवाकर सारा इन्तजाम कर दिया। उन लोगों के आने पर वहीं टिकाया। इस गोल में प्रतुलचन्द्र गाँगुली, नरेन्द्र मोहन सेन, रमेशचन्द्र चौधरी, रबीन्द्र मोहन सेन, रमेशचन्द्र आचार्य, क्षेत्र सिंह और उनके छोटे भाई सतीश सिंह, स्वामी सत्यानन्द और शचीन्द्र भट्टाचार्य थे। प्रतुल गाँगुली की माताजी भी थीं।

पहले कई एक दिन बनारस के दर्शनीय स्थानों को दिखाने में बीता—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, सारनाथ, रामनगर, बेनी माधव का धौरारा आदि। फिर संगठन की बातचीत चली। उन दिनों अनुशीलन समिति के सबसे बड़े संगठनकर्ता प्रतुल गाँगुली थे, लेकिन अन्तिम शब्द नरेन्द्र मोहन सेन का था। वे दोनों बड़े प्रवीण और पुराने क्रान्तिकारी थे। सन् 1910 से जेल काटे हैं।

प्रतुल गाँगुली देहरादून जिले में रायपुर ओर्डीनेंस फैक्टरी के क्वार्टर में ब्लडप्रेशर और पक्षाघात से पीड़ित थे। वहाँ का कोई बड़ा अफसर उनका दामाद था। दो साल से अधिक समय हुआ, वह गुजर गए और नरेन्द्र मोहन सेन की मृत्यु पिछले साल बनारस के रामकृष्ण मिशन में हुई है सतहत्तर साल के उमर में। वे उस वक्त संन्यासी नरेन महाराज थे।

मैंने इन दोनों के सामने अपनी कठिनाई रखी। उन्होंने सतीश सिंह को बनारस छोड़ जाने की बात कही। मैं राजी हो गया खुशी से। वह कुछ हम उमर ही थे, तजुर्बेकार थे और सतीश सिंह से मेरी गहरी मित्रता हो गयी थी। सन् 1918 में

पुलिस के साथ गोली चलाने में वे पकड़े गए थे। आर्म्स एक्ट में सज़ा हुई थी—शायद पाँच या सात साल की। जेल में कई साल रह चुके थे।

अब उठी बात सतीश सिंह के खर्चा चलाने की। मकान किराया, खाना, कुछ पुस्तकें, साहित्य आदि। कम से कम महीना तीस रुपया। मैं आधा देने के लिए तैयार हो गया और कहा कि शेष आधा बंगाल अनुशीलन दे। इस पर नरेन्द्र सेन राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा—तुम्हारी स्थिति बिगड़ते देर नहीं लगेगी। फिर बनारस छोड़कर भागना पड़ेगा। ऐसे काम नहीं चलेगा।

इधर प्रतुल गाँगुली एक और आश्रम बनाना चाहते थे। स्वामी सत्यानन्द को बनारस में छोड़ जाना चाहते थे। यह नौजवान साधु पार्टी का उत्साही कार्यकर्त्ता था और शचीन्द्र भट्टाचार्य बह्मचारी बन उनका शिष्य बनकर रहेगा। प्रतुल गाँगुली का कहना था कि बनारस धर्मप्रधान स्थान है। यहाँ एक आश्रम बनाकर देखना है। इस आश्रम से भी पार्टी मेम्बरों का 'रिक्रूटमेण्ट' होगा। मेम्बर पोख्ता बन जाने पर उसका सतीश सिंह से परिचय कराया जाएगा। सतीश सिंह आश्रम कभी नहीं आयेंगे। आश्रमवासी सतीश सिंह से नहीं मिलेंगे। 'कनेक्टिगं' लाइन रहूँगा मैं।

लेकिन इन सब कार्यक्रमों के लिए, अलग-अलग इस्टेब्लिशमेंट के लिए, तीन आदमी के रहने-खाने के लिए खर्चा चाहिए। स्वामी सत्यानन्द एक पुलिस अफसर के पुत्र हैं। पिता सी.आई.डी. पुलिस में भर्ती कराना चाहते थे। बेटा भागकर साधु बन गए हैं। साधुगिरी या भिक्षा माँगना इनके वश का नहीं। हाँ, पार्टी का संगठन अच्छा करेंगे।

रात को ग्यारह बजे तक बातचीत करके भी कोई किनारा नहीं हो सका। घर लौटकर मैंने बहुत सोचा। यह मौका हाथ से जाने देना नहीं चाहता था, लेकिन रुपया कहाँ से मिले। रात गहरी होने पर मुझे अकस्मात् ख्याल आया कि दानवीर शिवप्रसाद गुप्त के पास क्यों न जाया जाए।

दूसरे दिन मैंने प्रतुलचन्द्र गाँगुली और नरेन्द्र मोहन सेन से यह बात कही। वे लोग राजी हो गए। प्रतुल गाँगुली और नरेन्द्र सेन 'बोरिशाल षड्यन्त्र' मामले के मुलजिम रहे हैं। ढाका जिला कांग्रेस कमेटी इनके हाथ में थी। ढाका, बंगाल के मशहूर आदमी थे। शायद गुप्तजी इनके नाम जानते हों। मैंने कहा—गुप्तजी से मिला जाए और फिर श्रीप्रकाशजी से। लेकिन श्रीप्रकाशजी बड़े ही पराजय मनोवृत्ति की बातें किया करते हैं। उनसे न मिला जाए तो अच्छा।

फिर योजना के मुताबिक मैं जाकर नगवा में शिवप्रसाद जी के मकान पर उनसे मिला। वह कई व्यक्तियों से घिरे हुए थे। मैंने अपना परिचय दिया—'हेल्थ

इम्प्रूविंग एसोसिएशन' के सचिव के रूप में और एकान्त में बात करने का आग्रह किया। और फिर एकान्त में बताया कि बंगाल के क्रान्तिकारी व अनुशीलन समिति के इस वक्त के कर्णधार प्रतुलचन्द्र गाँगुली व नरेन्द्र मोहन सेन बनारस आये हैं, मेरे अतिथि हैं। आपसे मिलना चाहते हैं। उनके पूछने पर कि क्यों मिलना चाहते हैं? मैंने कहा—यह तो उन्होंने बताया नहीं। ये लोग कांग्रेसी नेता हैं। गया कांग्रेस से बनारस घूमने आये हैं। सब दर्शनीय स्थान देख चुके हैं। कहते हैं—आपका दर्शन न होने से बनारस भ्रमण अ़धूरा रह जाएगा।

वह बहुत हँसे इस बात पर, और बोले—मैं किस लायक हूँ। कोई चीज नहीं हूँ। शायद मतलब कुछ समझ गये थे। उन्होंने कहा—कल रात का खाना मेरे यहाँ पर होगा। वे दोनों आदमी और आप भी आइए। बातचीत होगी।

समय पर हम तीनों पहुँच गये। खाना निराषिस था—लेकिन था राजसी ठाठ का। ज्यादा बातें उन्हीं लोगों से हुईं। मैं थोड़ा-बहुत बोला। मैं संगठन की बातें विस्तार से कहने जा रहा था कि नरेन सेन ने मुझे रोक दिया। उन्होंने कहा—विस्तार से बताने की जरूरत नहीं। गुप्त संगठन है। जेल काटे हुए तजुर्बेकार आदमी को छोड़े जा रहा हूँ। ये नौकरी कर अपना गुजर नहीं कर सकते हैं। पूर्णकालिक क्रान्तिकारी हैं। इनके खर्च के लिए पैसा चाहिए। आपका यथासाध्य दान चाहिए पार्टी का काम आगे बढ़ाने के लिए।

चलते वक्त शिवप्रसाद गुप्ता ने नगद पाँच सौ रुपये दिये। मुझसे रहा नहीं गया, मैंने कहा कि यह छःमाही चन्दा या सालाना? फिर कब आऊँ दूसरी किस्त के लिए? वह कुछ नाराज़ हो गए, बोले—कोई किस्त नहीं, यह आखिरी एकमुश्त। फिर कभी मत आना। मैं अहिंसा को सिद्धान्त मानता हूँ। नीति या पॉलिसी नहीं। आपका काम बिलकुल नापसन्द है मुझे। फिर कभी मत आना मेरे पास। उनके नाराज़ होने पर भी हम लोग हँसी-खुशी चल दिये। चाहे एकमुश्त हो, उन दिनों के पाँच सौ बहुत थे, आज के (सन् 1962 में जब यह लेख लिखा गया था) दो हजार के बराबर और हम बहुत खुश हुए थे।

इसी पैसे के बल पर बनारस में 'विवेक-आश्रम' खोला गया। जिसके इंचार्ज स्वामी सत्यानन्द थे और उनके शिष्य थे—ब्रह्मचारी शचीन्द्र भट्टाचार्य। बाद में यह मालूम होने पर कि बिहार में 'विवेक-आश्रम' नाम का एक आश्रम है, इसका नाम बदलकर 'कल्याण आश्रम' रखा गया। यह आश्रम दस महीना चलाया गया था। उसी पाँच सौ रुपये के बल पर सतीश सिंह बनारस रह गये थे और क्रान्तिकारी संगठन बनारस में पनपा था।

मैं फिर कभी शिवप्रसाद जी से नहीं मिला था। लेकिन बाद के तेरह साल बाद जेल में शचीन्द्र सान्याल से मालूम हुआ कि शचीन्द्रनाथ सान्याल सन् 1924 के आखीर के करीब उनसे मिले थे और शिवप्रसाद जी ने उन्हें भी पाँच सौ रुपये दिये थे, जिसे लेकर शचीन्द्र सान्याल कलकत्ता चले गये थे, संगठन करने। वहीं उन्होंने 'दी रिवोल्यूशन' छपाया था और यतीन्द्रनाथ दास को पार्टी में लाये थे। यही यतीन्द्रनाथ दास बाद में लाहौर जेल में भूख हड़ताल कर शहीद हो गये थे।

काकोरी षड्यन्त्र मुकदमे में सज़ा काटकर छूटने के बाद एक दिन शिवप्रसाद जी गुप्ता ने मुझको निमन्त्रित कर भोजन कराया। उस दिन उन्होंने शिकायत की थी—मैं उनसे फिर क्यों नहीं मिला? प्रतुल गाँगुली और नरेन सेन के चले जाने के बाद फिर क्यों नहीं मिला। मैंने बताया था कि रास्ता तो आपने ही बन्द कर रखा था। उन्हें याद दिलाने पर कि पाँच सौ रुपये देते वक्त आपने ही तो कहा था कि फिर कभी मत आना। उनको आश्चर्य हुआ—ऐसा तो मैं चन्दा देते वक्त सबसे कहता हूँ। लेकिन फिर भी तो लोग आते हैं। मानते कहाँ हैं? मेरा तो कोई गुण है ही नहीं। बाप-दादा बटोरकर रुपये रख गये हैं, उसी का तो खजांची हूँ, इस्तेमाल करता रहता हूँ।

उस दिन मुझे साफ पता चल गया कि शिवप्रसाद जी के कुछ कठिन बहिरावरण के अन्दर एक कोमल दिल है और बड़े धनी और दानवीर होने पर भी उनमें अहम नहीं है। अपने धन को भी परायी अमानत जैसा समझते हैं।



दानवीर श्री शिवप्रसाद गुप्त

जो अहिंसा को सिद्धान्त मानने पर भी क्रान्तिकारियों को आर्थिक सहायता प्रदान करते थे, उनका सम्मान करते थे।

बेमिसाल चन्द्रशेखर आज़ाद

आजाद 6 साल फरार रहकर अंग्रेजों से जूझते रहे

वीर शहीद चन्द्रशेखर आजाद सही माने में 'धरतीपुत्र' (Son of the soil) थे। उन्होंने साधारण गरीब परिवार में जन्म लिया। विद्याध्ययन के लिए काशी आकर सन् 1921 में असहयोग आन्दोलन में बेंत खाए। उसके बाद सन् 1923 के मध्य में मन्मथनाथ गुप्त के क्रान्तिकारी दल में आने के बाद गुप्त के ग्रुप के सदस्य प्रणवेश चटर्जी द्वारा चन्द्रशेखर आजाद क्रान्तिकारी दल में आए। उस समय आजाद केवल 16 वर्ष के थे। तब तक उनके व्यक्तित्व का विकास नहीं हुआ था, लेकिन चन्द्रशेखर की ज्वलन्त देशभक्ति, अदम्य उत्साह तथा असीम साहस किसी मँजे और सुलझे क्रान्तिकारी से कम नहीं थे। चन्द्रशेखर के चंचल स्वभाव और प्रत्येक काम के करने में उतावलेपन की मनोवृत्ति के कारण शुरू में उन्हें कोई अधिक जिम्मेदार नहीं समझता था, लेकिन ईमानदारी, लगन, त्याग की भावना तथा अनुशासनबद्ध आचरण के द्वारा चन्द्रशेखर के चरित्र में गम्भीरता आती गई और इस तरह बालक चन्द्रशेखर के व्यक्तित्व का विकास होता गया।

साल भर बाद सन् 1924 में 17 वर्ष की अवस्था से ही वे 'एक्शन्स' में बुलाए जाने लगे। प्रथम अवसर पर जब उन्हें एक्शन में साथ लिया गया उस समय हम 22 क्रान्तिकारी शाहजहाँपुर से चलकर रेल द्वारा दूसरे जिले के एक मुफस्सिल स्टेशन पहुँचे। हम सब अलग-अलग होकर वहाँ पहुँचे। हमारे साथ काफी अस्त्र-शस्त्र (बन्दूकें, रायफल, रिवाल्वर, पिस्टल आदि) थे। स्टेशन पर सहज ही मेरे मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि मैं यह अनुमान लगाऊँ कि यदि स्टेशन पर पुलिस रेड हो जाए तो हममें से कौन पकड़ा जाएगा और कौन अपने आपको बचा ले जाएगा, वैसे बच निकलने का आदेश तो सभी को दिया गया था। मैंने

देखा कि करीब-करीब सभी पकड़े जा सकते हैं। रामप्रसाद बिस्मिल तथा अशफाकउल्ला खाँ का व्यक्तित्व ही ऐसा था कि कभी भीड़ में वे छिप नहीं सकते थे। हाँ, भले ही रोब के बल पर वे दोनों निकल जायें—रामप्रसाद कोई अफसर बनकर और अशफाक कोई राजा या कुँवर साहब बनकर। बाकी लोगों में से एक-दो रेलवे कर्मचारी या नहर विभाग के कार्यकर्ता के भेष में बच सकें और अन्यों के लिए तो पुलिस की गिरफ्त से बच सकना असम्भव-सा ही है। मैंने फिर एक बार साथियों पर दृष्टि डाली, तो आजाद कहीं दिखाई नहीं दिये। ट्रेन सीटी देकर चली गई। फिर मैंने उनके लिए दृष्टि दौड़ाई तो देखता क्या हूँ कि आजाद एक लाठी टेंकती हुई बुढ़िया को सहारा देकर चले आ रहे हैं। साथ ही बुढ़िया दादी से ठेठ देहाती भाषा में बातें करते जा रहे हैं। फाटक पर पहुँचे और अपना तथा बुढ़िया का टिकट बाबू को देकर बाहर निकल गए। बाद में वह बाहर की भीड़ में इस प्रकार घुल-मिल गए कि मेरी दृष्टि उन्हें खोजने पर भी न पा सकी, दूर से उन्हें ढूँढ़ निकालना भी कठिन हो गया। तब मैंने यह अनुभव किया कि पुलिस के छापे में यदि सबके सब भी पकड़े जायें तो भी आजाद पुलिस के हाथ नहीं लगेंगे, क्योंकि वे धरतीपुत्र जो हैं इसीलिए उस धरती के वातावरण में सहज ही घुल-मिल गए।

इसके बाद चन्द्रशेखर आजाद काकोरी ट्रेन डकैती तक प्रायः सभी डकैतियों में रहे। उस समय तक बमरौली, बिचपुरी, सराय महेश, द्वारकापुर की डकैतियों के एक्शन्स हो चुके थे। इन सभी में आजाद साथ थे। इन एक्शन्स में चन्द्रशेखर आजाद तथा अन्य साथियों ने काफी अनुभव प्राप्त कर लिया था।

सन् 1924 से ही बनारस तथा लखनऊ छोड़कर मैंने झाँसी को अपना हेड-क्वार्टर बनाया था। झाँसी में भी बनारस की तरह मुझे संगठन बनाने में सहायता मिली। सन् 1925 तक मैंने वहाँ सुदृढ़ संगठन तैयार कर दिया था। इसी बीच मैंने अनुभव किया कि यहाँ भी मेरे पीछे सी0आई0डी0 लग गई है। साथ ही वहाँ के लोगों को यह मालूम हो गया कि मैं क्रान्तिकारी हूँ। ऐसी परिस्थितियों में मैंने अनुभव किया कि मुझे झाँसी छोड़नी पड़ेगी। अब मेरे सामने प्रश्न था कि यहाँ का संगठन किसे सौंपा जाए। पहले मैंने मन्मथनाथ गुप्त से बात चलाई पर वे कालेज की पढ़ाई छोड़कर बनारस से जाने को तैयार न हुए। तब आजाद की बात मेरे ध्यान में आई। क्यों न उन्हीं को यह भार सौंपा जाए। वैसे आजाद अंग्रेजी पढ़े-लिखे नहीं थे फिर भी मुझे यह विश्वास था कि वे अपनी लगन और कार्यक्षमता के कारण संगठन सम्भाल लेंगे और आगे चलकर मेरा यह विश्वास

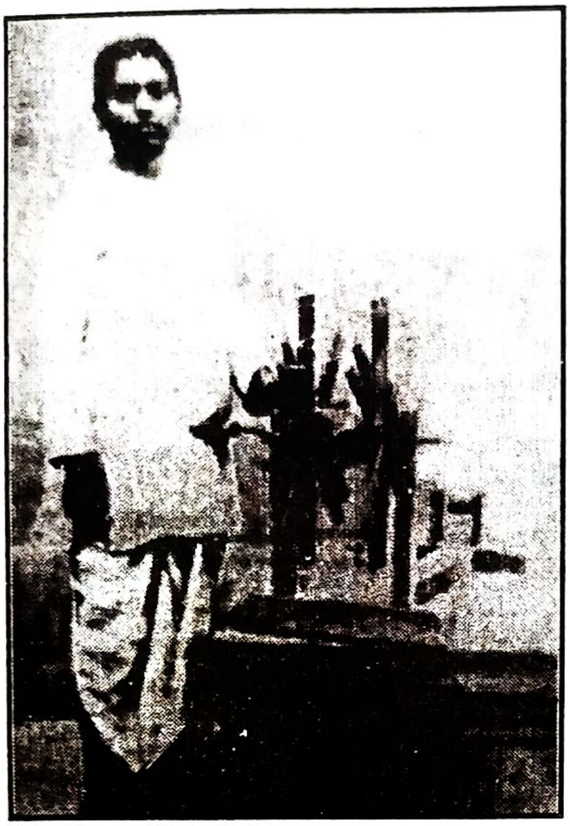
सत्य ही निकला। सन् 1925 के प्रारम्भ में इसी सम्बन्ध में आजाद को मैंने झाँसी बुलाया। उन्हें मैंने सात-आठ दिन झाँसी रखकर कुछ प्रमुख व्यक्तियों जैसे—मास्टर रुद्रनारायण, भगवानदास माहौर, सदाशिवराव मल्कापुरकर, विश्वनाथ राव वैशम्पायन आदि से परिचय करा दिया।

काकोरी ट्रेन डकैती के कुछ दिनों बाद जब मैं फिर झाँसी आया तो वहाँ भी बनारस की तरह पुलिस की सरगर्मी देखी। तब मैं वहाँ से भी चल पड़ा और घूमता-घामता दशहरे के मौके पर बनारस पहुँचा, तो चन्द्रशेखर ने कहा कि पुलिस उसका भी पीछा करने लगी है और यह सम्भावना है कि सरकार शीघ्र ही धर-पकड़ प्रारम्भ कर दे। वे किसी भी प्रकार जेल जाने को तैयार नहीं। तब मैंने राजेन्द्र लाहिड़ी से परामर्श कर आजाद को झाँसी जाने के लिए कह दिया; परन्तु इसकी जानकारी मेरे और राजेन्द्र लाहिड़ी के सिवा अन्य किसी को नहीं थी। इसके बाद मेरी आजाद से भेंट नहीं हुई।

फरार अवस्था के दिनों, मैं कानपुर में हुए कांग्रेस अधिवेशन से होकर झाँसी गया था। उन दिनों मैं संन्यासी के वेश में था। उसी वेश में मैं झाँसी गया और वहाँ एक रात रहा भी। वहाँ अधिक रहना खतरे से खाली नहीं था। इसलिए दूसरे दिन सबेरे ही शहर छोड़कर चला गया। झाँसी में मुझे वैसे भी बहुत लोग जानते थे और पुलिस वाले तो अच्छी तरह पहचानते थे, इसलिए शीघ्रातिशीघ्र वहाँ से चला जाना आवश्यक था। उस समय मुझे ज्ञात था कि आजाद ओरछे के पास सातार नदी के तट पर हैं, परन्तु मैं उनसे मिलने नहीं गया।

मेरे पकड़े जाने के बाद भी आजाद के समाचार मुझे जेल में मिलते रहे और मेरी धारणा के अनुसार आजाद न केवल एक अच्छे सेनापति थे, बल्कि अच्छे संगठनकर्त्ता भी सिद्ध हुए। अपनी इस योग्यता के कारण फरार अवस्था में भी वे 6 वर्षों तक उत्तर भारत में सक्रिय रहे। यह तो ब्रिटिश सरकार को एक चुनौती थी। आजाद के सामने इस बीच भारत से बाहर जाने के अनेक मौके आए, पर हर बार उन्होंने इन्कार किया और फिर स्वतन्त्रता संग्राम में जूझते हुए एक दिन 27 फरवरी सन् 1931 को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में खुले सशस्त्र संघर्ष में शहीद हो गए।

बड़े दुःख की बात है कि आजादी के 20 वर्ष पश्चात भी ऐसे वीर, बलिदानी का, जिसके त्याग और बलिदान से भारत स्वतन्त्र हुआ, इतिवृत्ति आजाद भारत के नौजवानों को पढ़ाया भी न गया जबकि हमारे पराजय का इतिहास वारेन हेस्टिंग्स तथा लॉर्ड क्लाइव के द्वारा किये गए अनाचारों, अत्याचारों, लूटखसोट तथा बर्बर



केन्द्रीय कारागार, वाराणसी में बेंत की सज़ा पाने के बाद चन्द्रशेखर 'आजाद' का पं॰ शिवविनायक मिश्र के घर पर लिया गया बचपन का चित्र



युवा चन्द्रशेखर आजाद

शासन कर देश को कैसे गुलाम बनाया गया, पढ़ाया जाता रहा और आज भी पढ़ाया जा रहा है। भारत के क्रान्तिकारी वीर शहीदों के त्याग और बलिदान की परम्परा की इतिवृत्ति पढ़ाने से नौजवानों को साहस, आत्मविश्वास और शौर्य की प्रेरणा मिलती, ऐसे इतिहास का शमन किया गया, उसे झुठलाया गया साथ ही इस असत्य का प्रचार किया गया कि कांग्रेस ने ही भारत को आजाद कराया अर्थात केवल नमक बनाकर और चर्खा कातकर भारत को आजादी मिली। इसका परिणाम यह हुआ कि महान भारत एक महान बलशाली राष्ट्र निर्मित होने के बदले एक भीरु, कायर और नपुंसक राष्ट्र बना। परिस्थिति यहाँ तक बिगड़ी कि आज संसार के सामने भारत का विकृत रूप एक दुर्बल भिखारी के सिवा कुछ नहीं है।

मेरे सहयोगी तथा मित्र विश्वनाथ राव वैशम्पायन ने चन्द्रशेखर आजाद की प्रामाणिक जीवनी लिखकर एक महान कार्य किया है और इस प्रकार देश की एक ज्वलन्त माँग को पूरा किया है। मुझे आशा है कि यह पुस्तक भारत की नवीन पीढ़ी के हाथों में पहुँचकर उन्हें देशभक्ति, साहस तथा बलिदान की प्रेरणा देगी। अन्य क्रान्तिकारी साथियों से भी मेरा अनुरोध है कि वे भी क्रान्तिकारी इतिहास के संकलन में योगदान कर अपना कर्तव्य पूरा करें। जो वीर बलिदान हो गए, वे तो अपना कर्तव्य कर गए। अब हम जो उनके सहयोगी जीवित हैं, उनका कर्तव्य हो जाता है कि उन वीरों के बलिदानों को इतिहास के पन्नों में अमर करें। भारत युग परिवर्तन के संक्रमण काल से गुजर रहा है। दिन-प्रतिदिन अकल्पित परिवर्तन हो रहे हैं। इस संक्रमण काल में क्रान्तिकारी साहित्य की बड़े पैमाने पर आवश्यकता है जिसे हमारे क्रान्तिकारी साथी ही पूरा कर सकते हैं। ऐसे साहित्य से आज के क्रान्तिकारी युग प्रवर्तकों को प्रेरणा और मार्गदर्शन मिलेगा और हमारी नवीन पीढ़ी सच्चे मायनों में स्वतन्त्र भारत की योग्य कर्णधार बन सकेगी।

शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद और आत्महत्या?

महान् क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आज़ाद का जन्म 23 जुलाई, 1906 को हुआ था। उनका जन्मशताब्दी-वर्ष, वर्ष 2006 में मनाया गया तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ संघर्ष में उनके 27 फरवरी 1931 को शहीद होने के 75 वें बलिदान दिवस के अवसर पर कई समारोह तथा श्रद्धांजलि के कार्यक्रम सम्पन्न हुए तथा उनकी शौर्य-गाथा का पुनःस्मरण किया गया। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि मात्र 25 वर्ष की आयु में इस क्रान्तिकारी ने 6 वर्षों तक अंग्रेजों के विरुद्ध जो लम्बा संघर्ष किया, वह स्वतन्त्रता संग्राम के विश्व के इतिहास में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

जनश्रुति है कि इस महान योद्धा ने 27 फरवरी 1931 को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में ब्रिटिश पुलिस से संघर्ष करते हुए अपने पिस्टल की अन्तिम गोली से अपनी इहलीला समाप्त कर ली। जनसाधारण के साथ सरकारी अफसरों, साहित्यकारों, इतिहास-लेखकों तथा समाज के हर वर्ग में यही धारणा बनी हुई है। कुछ वर्ष पूर्व उ.प्र. के विद्वान राज्यपाल स्व0 श्री विष्णुकान्त शास्त्री जी ने लखनऊ में एक कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए इसी बात का उल्लेख किया था, जबकि वास्तविकता सम्भवतः इसके विपरीत है। चन्द्रशेखर आजाद के साथी व समकालीन क्रान्तिकारी तो कोई भी वर्तमान में जीवित नहीं हैं जो इस बात का खण्डन या विरोध करते; किन्तु उनका यह दृढ़ मत था कि आजाद पुलिस संघर्ष में पुलिस की ही गोली से शहीद हुए और आजाद के सभी क्रान्तिकारी साथी समय-समय पर सदैव इसी तथ्य को प्रस्तुत भी करते रहे, परन्तु तथाकथित इतिहास लेखकों व सरकार की इस विषय पर सदैव की भाँति उदासीनता बनी रही। इस विषय में यदि वास्तविकता का पता न चले, तथ्यों का खुलासा न हो, तो इतिहास में यही उल्लेख मिलेगा कि चन्द्रशेखर आजाद पुलिस संघर्ष में अपनी अन्तिम गोली, स्वयं को मारकर शहीद हो गए और यह उस महान क्रान्तिकारी के प्रति अन्याय होगा।



27 फरवरी, सन् 1931 को अल्फ्रेड पार्क, इलाहाबाद में पुलिस संघर्ष में वीरगति प्राप्त चन्द्रशेखर आजाद

3 अगस्त, 1976 को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क जिसका नाम अब चन्द्रशेखर आजाद पार्क है तथा आजाद की आदमकद मूर्ति भी स्थापित की गई है, की सार्वजनिक सभा में प्रख्यात क्रान्तिकारी तथा आजाद के साथी शचीन्द्र नाथ बख्शी ने दावा किया था कि ब्रिटिश पुलिस से घिर जाने के बाद आजाद ने स्वयं को अपनी अन्तिम गोली नहीं मारी थी, बल्कि पुलिस की गोली से ही शहीद हुए थे। आजाद के शहीद होने के समय दिनांक 27 फरवरी, 1931 को शचीन्द्र नाथ बख्शी लखनऊ जेल में काकोरी षड्यन्त्र के मुकदमे में प्राप्त आजीवन कारावास की सज़ा काट रहे थे तथा ब्रिटिश पुलिस द्वारा घेर लिए जाने पर आजाद द्वारा कथित आत्महत्या की खबर समाचार-पत्रों में उन्होंने पढ़ी थी और जेलर के माध्यम से इस कायरतापूर्ण कथित आत्महत्या की घोषणा का उन्होंने विरोध किया था तथा विरोधस्वरूप तीन दिनों का अनशन भी किया था। जेल से रिहा होने के बाद सन् 1938 में उन्होंने पोस्ट-मार्टम रिपोर्ट का तथा तत्कालीन डीवाई.एस.पी. नॉट बावर द्वारा दी गई रिपोर्ट का अध्ययन किया था जिससे स्पष्ट होता था कि आजाद के जाँघ में गोली लगी थी और जिस गोली से उनकी मृत्यु हुई थी वह ब्रिटिश पुलिस के राइफल की गोली थी, न कि माउज़र या कोल्ट की, जो आज़ाद के प्रिय पिस्टल थे और जिसे वे हमेशा अपने साथ रखते थे।

'Azad Did Not Commit Suicide'

National Herald : 4th August 1976 Lucknow

From Our Staff Reporter

ALLAHABAD, Aug. 3.—Mr. Shachindra Nath Bakshi, an old revolutionary and an associate of martyr Chandrashekhar Azad, claimed here today that Azad did not commit suicide by shooting himself when trapped by the British soldiers but was killed by the bullets of the policemen.

Mr. Bakshi made this statement at a public meeting held in Azad Park this evening in an attempt to set at rest the controversy about the manner of Azad's killing.

He said he was in Lucknow jail when he read in newspapers of Azad's death at the hands of the British. "I immediately protested to the jailer against this cowardy manner of his killing. I went on a three-day protest fast in the jail", he said.

Mr. Bakshi told the gathering that on being released from the jail he studied the post-mortem ebamination report and also the report submitted by Mott Bower, a British police official, which corroborated the theory of Azad having been injured by bullets in the thigh and killed by the British soldiers.

Mr. Bakshi said he was convinc-el that Azad never committed suicide.

Northern India Patrika (N.I.P.)
Allahabad
4-8-1976

New light on Azad's death

BY A STAFF REPORTER

ALLAHABAD, Aug. 3

The great revolutionary and martyr Chandra Shekhar Azad was shot dead by the police personnel, who on tips given by his associate, rushed to the Alfred Park here on the fateful day of 27th February, 1931. Azad who was secretly hiding there was surrounded by a contingent of police personnel led by Nott Barwar, the then S.P. Allahabad.

This startling disclosure was made today by Azad's close associates Mr. Sachindra Nath Bakshi and Mr. Ram Krishna Khatri. They dismissed the opinion held so far that Azad shot himself on his head and it was the last bullet he had in his pistol.

They said that it was significant to know the exact truth about Azad's death as it bore the imprints of the nation's historic events.

Mr. Bakshi said that after seeing records of postmortem and other relevant documents they found that the bullet which took the life of Azad was that of a police rifle and not of mausere or colt, the two favourite pistols of Azad.

Paying tributes, these revolutionaries said that Azad was a man of action and courage and represented all that was heroic.

शहीद होने के बाद चन्द्रशेखर आज़ाद के शव की तलाशी ली गई थी तथा उनके पिस्टल को अंग्रेज अपने साथ ब्रिटेन ले गए थे। स्वाधीनता के वर्षों बाद क्रान्तिकारियों के अथक प्रयासों के पश्चात, आज़ाद का वही पिस्टल ब्रिटेन से वापस प्राप्त किया गया, जो अब चन्द्रशेखर आजाद पार्क, इलाहाबाद स्थित संग्रहालय में प्रदर्शित है। उक्त पिस्टल कोल्ट है।

दिनांक 3 अगस्त सन् 1976 के सार्वजनिक सभा के समाचार तथा आज़ाद का ब्रिटिश पुलिस की गोली से ही शहीद हो जाने की रिपोर्ट विभिन्न अखबारों में मुंख्य रूप से प्रकाशित हुई। उक्त रिपोर्ट का समर्थन करते हुए तथा 27 फरवरी, 1931 को अल्फ्रेड पार्क में आजाद को पुलिस द्वारा घेर लिए जाने के बाद की घटना के प्रत्यक्षदर्शी, 7 एडमोन्स्टन रोड, इलाहाबाद के निवासी श्री एच. पी. वार्शनी ने नार्दन इण्डिया पत्रिका के सम्पादक के नाम एक वक्तव्य लिखा जो 19 अगस्त सन् 1976 को प्रकाशित हुआ। उन्होंने लिखा—

27 फरवरी, 1931 को अल्फ्रेड पार्क में आजाद को पुलिस द्वारा घेर लिए जाने के बाद मैं इस दुःखद घटना का चश्मदीद गवाह था। मैं म्योर कालेज गेट जो थार्नहिल रोड (अब दयानन्द मार्ग) की तरफ खुलता है, से अपनी गाड़ी से लौट रहा था तथा तत्कालीन अल्फ्रेड पार्क के गेट के अन्दर प्रवेश करना चाहता था, तभी मैंने देखा पुलिस की एक गाड़ी थोड़ी दूर खड़ी है और दक्षिण-पूर्वी छोर से दो-तरफा गोलियों की बौछार की आवाज आ रही है।

एक सिपाही ने मुझे अन्दर जाने से रोका। उस समय पार्क की कोई चहारदीवारी नहीं थी तथा काँटेतार के कारण उस दृश्य को देखने में कोई कठिनाई नहीं हो रही थी। कई खाकी वर्दीधारी पुलिस अधिकारी, पार्क के बीच से गुजरने वाले नाले के पास वृक्षों की आड़ लेकर दक्षिण-पूर्व की तरफ उँचाई पर स्थित शीशम के पेड़ की तरफ गोली चला रहे थे। पाँच या छह शीशम के पेड़, जहाँ वर्तमान में आजाद का स्मारक बना है, की तरफ से भी गोलियों की बौछार आ रही थी। दोनो तरफ से गोलियों का निशाना साधने वाले पेड़ों की आड़ लिये हुए थे। कई मिनटों तक गोलियों की बौछार जारी रही, फिर पुलिसवालों की तरफ से आवाज आयी—गिर गया..., गिर गया...। नज़दीक ही एकत्रित लोगों ने कहा—चन्द्रशेखर आज़ाद मारे गए। तुरन्त ही पुलिस ने उस स्थान की घेराबन्दी कर दी। हम लोग दो या तीन दिनों बाद ही उक्त स्थान तक जा सके। उक्त शीशम के पेड़ के दर्शनार्थ जनसाधारण के पहुँचने के कारण कुछ ही दिनों बाद पेड़ को अंग्रेजों द्वारा कटवा दिया गया। उस समय नॉट बावर इलाहाबाद के डीवाई.एस.पी. थे तथा

इस ऑपरेशन के इंचार्ज भी। आज़ाद को मारने का श्रेय उनको देते हुए कुछ समय पश्चात उनकी पदोन्नति कर एस.पी. बना दिया गया था।

यह बयान मैंने राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली के एक अधिकारी को पिछले वर्ष ही दिया था तथा उनसे अनुरोध किया था कि आस-पास के लोगों से, जो उस समय वहाँ उपस्थित थे, बयान लेकर इस तथ्य की पुष्टि की जा सकती है, परन्तु उक्त अधिकारी ने कहा कि आजाद ने आत्महत्या की थी, ऐसी ही सूचना है।

श्री एच. पी. वार्शनी, 7 एडमोन्स्टन रोड, इलाहाबाद का व्यक्तव्य, जो 19 अगस्त सन् 1976 को 'नॉर्दन इण्डिया पत्रिका' इलाहाबाद में प्रकाशित हुआ था, का कृपया अवलोकन करें।



Letters.... N.I.P. 19.8.76

THE AZAD EPISODE

Sir,—I support your staff reporter's report entitled "New light on Azad's death" which appeared on the front page of your issue dated August [illegible]. I was an eye-witness to that tragic happening. I was returning by my carriage on that fateful day through the then Muir Central College gate which opened on the Thornhill Road (now Dayanand Marg) and I intended to enter the then Alfred Park gate nearly opposite, when I noticed a police vehicle parked at some distance, and noise of rapid cross-fire coming from the south-eastern side.

A constable stopped my carriage from entering the park. There was no boundary wall of the park in existence at that time and the wire fence did not obstruct the view. Several khaki clad police officers were firing towards the "Shisham" trees on the rising ground to the south-east from under the cover of certain other trees which stood on the northern side of the shallow nala which runs inside the park along the Thornhill Road. Rapid fire was coming from behind the five or six "Shisham" trees then standing on the spot where the Azad memorial stands at present. The marksmen on both the sides took cover behind the trees soon after firing. After the cross-firing had continued for several minutes there was a shout from the police side "Girgaya", "Girgaya" and a knot of people who had collected nearby said Chandra Shekhar Azad had been shot dead. The place was cordoned off by the police and we could go there only two or three days later. As many people began to frequent the place, the Shisham trees were cut down a few days later. "Nott-Bower" (not "Barwar") was the Anglo-Indian Dy. S. P. posted at Allahabad at that time, and not the S. P. He was later promoted as Superintendent of Police [illegible]

I had given this version to an officer of the National Archives, New Delhi last year but was told that Azad was reported to have committed suicide. From a brave person like Azad, suicide after a heroic encounter would not be expected. The incident took place only 45 years ago and there must be other residents living nearby who saw or [illegible] of it. The version in the newspapers soon after as far as I remember, also said that [illegible] death was caused by police firing, the credit of which was taken [illegible] Nott-Bower, then in-charge of the operation. — H. P. Varshni, [illegible] Edmonstone Road, Allahabad.

इसी सन्दर्भ में आज़ाद के साथी तथा झाँसी के प्रख्यात क्रान्तिकारी एवं लेखक विश्वनाथ वैशम्पायन ने अपनी पुस्तक **'अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद'** के भाग-2 व 3 में आज़ाद की मृत्यु के सम्बन्ध में शोधपूर्ण तथ्यों सहित विवरण प्रस्तुत किया है। उक्त पुस्तक वर्ष 1967 में ही प्रकाशित हो गयी थी, परन्तु क्रान्तिकारियों के शौर्य-कथा को प्रसारित व प्रचारित न करने की रणनीति के तहत, उन तथ्यों के प्रति न सिर्फ विभिन्न सरकारें बल्कि इतिहासकार व लेखकवृन्द भी उदासीन बने रहे।

उक्त पुस्तक के पृष्ठ 263 व 264 में उल्लेख किया गया है कि—"आज़ाद के शव का पोस्टमार्टम दो मैजिस्ट्रेटों खान साहब रहमानबक्श कादरी व ठाकुर महेन्द्रपाल सिंह की देखरेख में सिविल सर्जन लेफ्टिनेण्ट कर्नल टाउनसेण्ड ने किया था और उनके साथ डा. गाडे तथा डा. राधेमोहन लाल भी थे। डाक्टरों की राय में यह कहना गलत है कि उन्होंने अपने आपको गोली मार ली थी। यदि ऐसा होता तो वहाँ पर चमड़ी तथा बालों के जलने के निशान होते, जो नहीं थे।" परिशिष्ट में उक्त पुस्तक के सन्दर्भित पृष्ठ 263 व 264 का अवलोकन करें।

इसी पुस्तक के पृष्ठ 267 पर अंकित है कि "आज़ाद के शव की तलाशी लेने पर उनके पास से 448 रुपये के नोट तथा कुछ नकदी निकली, साथ ही 16 गोलियाँ तथा 22 खाली कारतूस पड़े मिले।"

परिशिष्ट में सन्दर्भित पृष्ठ 267 का अवलोकन करें।

स्पष्ट है, आज़ाद के पास न ही गोलियाँ समाप्त हुई थीं और न ही उन्होंने अपने आपको अपने पिस्टल की अन्तिम गोली मारी थी। यह सर्वविदित है कि क्रान्तिकारियों के बलिदान की गौरव-गाथाएँ एक षड्यन्त्र के तहत धूमिल की जाती रहीं, जो आज भी जारी है एवं इसी कारण जनता को भ्रमित किया जाता रहा है। यह अलग बात है कि उनके कथित आत्महत्या से भी जनसाधारण में उनके प्रति सम्मान व श्रद्धा में कोई कमी न आई और उनकी 'आत्महत्या' भी वीरता का पर्याय बन गयी। परन्तु ऐतिहासिक सत्य व तथ्य को छिपाकर स्वतन्त्र भारत की जनता को भ्रमित रखना निन्दनीय है। उस महान क्रान्तिकारी का जन्मशताब्दी वर्ष बीत जाने तथा उनके शहीद होने के 75 बलिदान दिवस के बीत जाने के पश्चात भी, और स्वतन्त्रता प्राप्त होने के 61–62 वर्षों बाद ही सही, तथ्यों को सार्वजनिक कर वास्तविकता से देश की जनता को अवगत कराना एवं तदनुसार इतिहास में अंकित करने का दायित्व क्या इतिहास-लेखकों व सरकार का नहीं है?

वतन पे मरने वालों का,
क्या यही गलत निशां होगा?

परिशिष्ट

पुस्तक

'चन्द्रशेखर आज़ाद'

भाग--2 व 3

लेखक

विश्वनाथ वैशम्पायन

पृष्ठ 263, 264 व 267

जबकि मैं मैक्जीन निकाल कर दूसरी भर रहा था, मुझे मोटे व्यक्ति ने गोली मारी, जिससे मेग्जीन गिर पड़ी जो मेरे बायें हाथ में थी। तब मैं एक पेड़ (मौलश्री) की ओर भागा जो वहाँ से दस गज पर था। सिपाही पास की खाई में जा छिपे। इसी बीच विशेशर सिंह एक झाड़ी में रेंग कर पहुँचा। वहाँ से उसने मोटे आदमी पर गोली चलाई। जवाब में मोटे आदमी ने गोली चलाई जो विशेशर के मुँह पर लगी।

मैं पिस्टल न भर सका। जब जब मैं दिखाई देता मोटा व्यक्ति मुझ पर गोली चलाता रहा। आखिर वह पीठ के बल गिर पड़ा मैं नहीं कह सकता कि उस पर किसी ने गोली चलाई या वह पहले जख्मों से मर गया। इस बीच लोग जमा होगए—इसी बीच एक व्यक्ति एक वकशाट गन लेकर आया जो भरी थी। मैं नहीं जानता था कि मोटा आदमी सचमुच मरा है या बहाना कर रहा है। इसीलिए मैंने उस आदमी से उसके पैरों पर निशाना मारने को कहा। उस आदमी ने बन्दूक चलाई। उसके बाद मैं मोटे आदमी के पास गया तो वह मरा पड़ा था। उसका साथी भाग गया। मुझे पता नहीं कि वह घायल हुआ भी था या नहीं।

इसी बीच रामवदन सिंह सी० आई० डी० ने जो पास ही कहीं था कर्नलगंज पुलिस स्टेशन पर जाकर खबर दी कि पार्क में एक अंग्रेज पर कोई गोली चला रहा है। इस पर आफिसर इन्चार्ज राय साहब चौधरी बिसाल सिंह ने दो बन्दूक धारी सिपाही लिये तथा स्वयं पिस्टल लेकर साइकिल से रवाना हुआ। उसने देखा कि नाटवावर जो एक पेड़ की आड़ में है, उस पर कोई गोली चला रहा है। उसने एक नौजवान को नाटवावर की ओर आते देखा, पर वह बाद में गायब होगया। यह शंका है कि वह आजाद का साथी था और नाटवावर पर गोली चलाने की फिराक में था। नाटबाबर

के पास जो व्यक्ति बन्दूक लेकर आया था वह सफेद कपड़ों में एक कान्स्टेबिल था।

इसी बीच डालचन्द अपने घर गया। वहाँ से एक मित्र की मोटर साइकिल पर बैठकर पुलिस लाइन गया। वहाँ से उसने सुपरिन्टेण्डेंण्ट पुलिस मेजर्स (Measures) को फोन किया तथा सशस्त्र रिजर्व पुलिस के आदमियों को पार्क की ओर भेजा; परन्तु जब तक पुलिस के आदमी वहाँ पहुँचते तबतक लड़ाई करीब-करीब खत्म हो चुकी थी।

जाते समय नाटवावर ने हिदायत दी कि मोटे आदमी की तलाशी लेकर लाश चीर घर भेजी जाय। तथा ठाकुर विशेशर सिंह को अस्पताल।

दोनों ही दल जिन पेड़ों के पीछे थे उन पर कई गोलियों के निशान थे। नाटवावर के पीछे उसकी खड़ी मोटर में भी गोलियाँ लगी थीं, उससे बाडी में तीन जगह छेद होगए थे।

लीडर २ मार्च १९३१ के अंक में अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद के शव चीर फाड़ का समाचार प्रकाशित हुआ। यह चीड़ फाड़ शनिवार को दो मजिस्ट्रेटों खान साहबरहमान बक्श कादरी तथा ठाकुर महेन्द्रपाल सिंह की देख रेख में हुई। बाद में इन्हीं मजिस्ट्रेटों की देखरेख में शव दाह हुआ।

आजाद के शरीर का पोस्ट मार्टम (चीरफाड़) सिविल सर्जन लेफ्टिनेन्ट कर्नल टाउनसेण्ड ने किया। उसके साथ डा० गाडे तथा डा० राधेमोहन लाल थे। दो गोलियों के घाव दाहिने पैर के निचले हिस्से में थे। गोलियों से टीबिया बोन फ्रेक्चर हुई। एक गोली दाहिनी जाँघ से निकाली गई। घातक गोलियाँ दो थीं। एक तो सर में दाहिनी ओर और दूसरी छाती में जिसका पोस्ट मार्टम के

समय पता चला। कहा जाता है कि जो घाव छाती के आसपास हुआ था वह एक गोली जो दाहिने हाथ के कन्धे के पास छेदकर दाहिने फेफड़े में जा रुकी। सिर में दाहिनी ओर जो गोली लगी थी वह पैरिएटल (Parietal) बोन को छेदती हुई दिमाग में घुसी और सिर के नीचे दिमाग में बाईं ओर रुकी। डाक्टरों की राय में यह कहना गलत है कि उन्होंने अपने आप गोली मारली थी। यदि ऐसा होता तो वहाँ पर चमड़ी तथा बालों के जलने के निशान होते जो नहीं थे।

यह जानना सम्भव नही था कि किसी को पुलिस ने लाश पहचानने के लिए बुलाया पर सी० आई० डी० सर्किल में यह विश्वासपूर्वक कहा जाता था कि वे चन्द्रशेखर आजाद थे।

चीर-फाड़ के समय सशस्त्र पुलिस का पहरा था तथा दो मजिस्ट्रेट तैनात थे। मृत व्यक्ति ब्राह्मण था इसलिए पुलिस लाइन से ब्राह्मण रंगरूट बुलाकर उन्हीं से शव उठाकर लारी में रखा गया। लाश भारी थी इसलिए स्ट्रेचर पर न रखी जासकी। वह दूसरी लारी में रखी गई साथ सशस्त्र पुलिस थी। उसके बाद अब्दुलसमद पुलिस इन्सपेक्टर की निगरानी में दोनों लारियाँ नदी की ओर जाने को तैयार थीं।

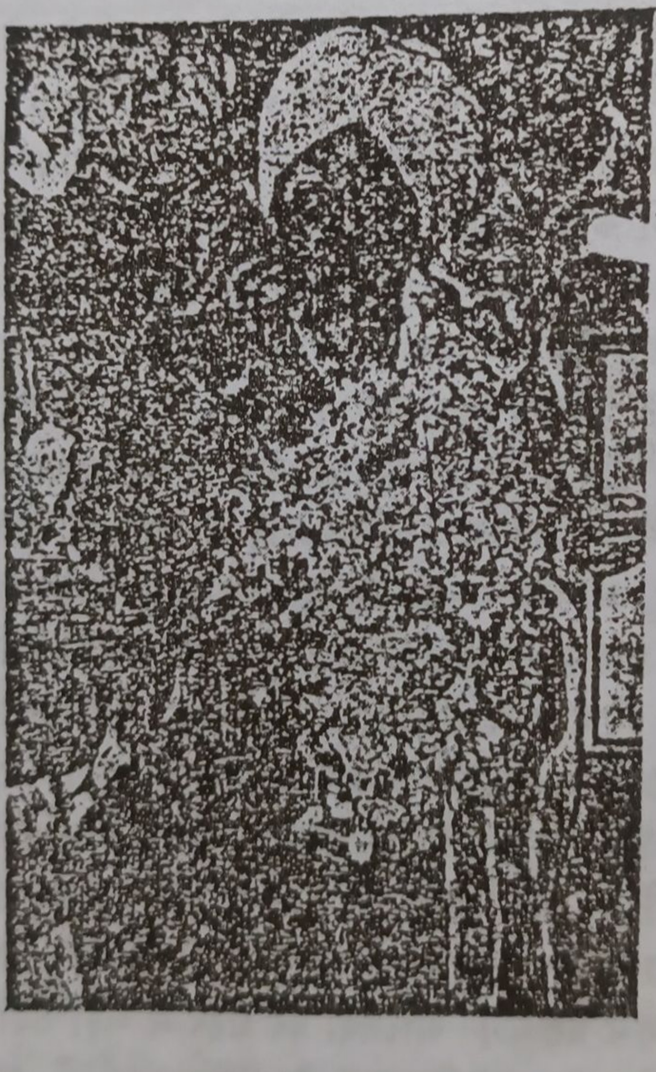
इसी बीच श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन आ पहुँचे। उनके साथ कुछ कांग्रेसी भी थे। उन्होंने लाश देखना चाही और कहा आजाद के रिश्तेदार आगए हैं। इसीबीच लारी चल पड़ी। मजिस्ट्रेट कादरी ने टंडन जी से जिला मजिस्ट्रेट से मिलने के लिए कहा। लाश लेजाने के विषय में गुप्तता रखी गई। पहले लारियाँ जार्ज टाउन की ओर गईं वहाँ से स्टैनले रोड घूमती रसूलाबाद घाट पर चली गई। जहाँ दाह संस्कार की सारी व्यवस्था की गई थी।

जब एक ब्राह्मण दाह संस्कार करा रहा था तो कुछ लोग त्रिवेणी

घाट पर तलाश कर रहे थे। मजिस्ट्रेट ने टण्डन जी से कहा दाह संस्कार कहाँ होना है इसका उसे पता नहीं और इन्सपेक्टर ने लोगों को त्रिवेणी घाट बताया।

जो व्यक्ति सवेरे बनारस से आए हैं अपने आपको आजाद का रिश्तेदार बताते हैं उनका नाम शिवविनायक मिश्र है। वे एक कांग्रेस कार्यकर्ता भी हैं। उन्होंने शाम की सभा में बताया कि वे आजाद का शव लेने जिला मजिस्ट्रेट के पास गये थे जिला मजिस्ट्रे ने सुपरिन्टेण्डेण्ट पुलिस के पास जाने को कहा। सुपरिन्टेण्डेण्ट पुलिस ने पहले तो कहा कि शव जला दिया गया है। परन्तु जब पण्डितजी ने कहा किंचीर घर से तो शव अभी कुछ देर पहले लेजाया गया है तो सुपरिण्टेण्डेट पुलिस ने दारागंज पुलिस स्टेशन इन्चार्ज के नाम पत्र दिया। इन्सपेक्टर ने त्रिवेणी घाट पर शव ढूंढा पर पता न चला। आखिर रसूलाबाद का पता चला पर जब ये लोग रसूलाबाद पहुँचे तब तक लगभग शरीर जल चुका था। मिश्र जी को सुपरिण्टेण्डेट की आज्ञानुसार दाह संस्कार की आज्ञा दे दी गई। इसी बीच श्रीमती कमला नेहरू, बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन भी वहाँ पहुंच गए। अन्तिम संस्कार होने पर उनकी अस्थियाँ एकत्रित कर पण्डित मिश्र शहर में लाए। स्टूडेन्टस् एसोसिएशन के प्रस्ताव के अनुसार जुलूस खद्दर भण्डार से निकाला गया, लकड़ी के तखत पर एक काली चादर बिछाई गई। जिस पर अस्थियाँ रखी गई। तखत लोगों ने अपने कन्धे पर उठाया था। जुलूस शहर में घूमता पुरषोत्तमदास पार्क पहुँचा। शवयात्रा में चलने वाले लोग नंगे सिर और नंगे पैर थे। अस्थियों पर शहर में जहाँ तहाँ फूल बरसाए गए। स्टूडेण्टस् एसोसिएशन के तत्वाधान में तथा श्री मोहन लाल गौतम की अध्यक्षता में सभा हुई। श्री गौतम स्टेडेण्टस एसो-सिएशन के अध्यक्ष थे।

सभा में श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन, श्रीमती कमला नेहरू श्री मंगलदेव सिंह, श्री काशीराम तिवारी श्री वसन्तलाल शर्मा, श्री शिवविनायक मिश्र, श्रीमती शचीन्द्र (प्रतिमा) सान्याल (काकोरी के अभियुक्त शचीन्द्रनाथ सान्याल की धर्मपत्नी) श्री पद्मकान्त मालवीय आदि के भाषण हुए।



श्री शिवविनायक मिश्र

मुसलमानों को छोड़कर शहर में हड़ताल रही। हड़ताल स्टूडे-

न्टस् एसोसिएशन ने कराई थी। उसने जनता से व्रत रखने का भी आग्रह किया था।

कहा जाता है कि सेवा समीति की ओर से डा० बेनीप्रसाद तथा पण्डित पद्मकान्त मालवीय ने शव दाह संस्कार के लिए माँगा था परन्तु जिला मजिस्ट्रेट बमफोर्ड ने शव यह कह कर नहीं दिया कि शव केवल मृतक के रिश्तेदार को ही दिया जा सकता है। आजाद के शव की तलाशी लेने पर उनके पास से ४४८ रुपये के नोट तथा कुछ नगदी निकला, साथ ही १६ गोलियाँ तथा २२ खाली कारतूस पड़े मिले।

कुछ लोगों का कहना है कि उनकी मृत्यु के बाद उनके शव का अपमान किया गया। कुछ का कहना है कि एक गोरे अफसर के कुत्ते ने उनका रक्त चाटकर बफादारी का साबूत दिया। कुछ ने उनके शरीर को घसीटा तथा गालियाँ दीं। पर कहीं आजाद की प्रसंशा भी सुनी गई। स्वयं सी० आई० डी० सुपरिन्टेण्डेण्ट ने जो चाँद प्रेस तलाशी लेने आए थे सहगल जी से आजाद के जीवन की प्रशंसा की। उनका कहना था कि ऐसे सच्चे निशानेबाज उन्होंने बहुत कम देखे खासकर ऐसी शंका मय परिस्थिति में जब तीन ओर से उनपर गोलियों की वर्षा हो रही थी। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि यदि पहली गोली उनकी जाँघ में न लगी होती तो पुलिस का एक भी अफसर जीवित न बचता, क्योंकि नाटबावर का हाथ पहले ही बेकार हो चुका था। उन्होंने यह भी बताया था कि आजाद विप्लवी दल का कोई प्रतिष्ठित नेता था।

भविष्य के संवाद-दाता ने दूसरे दिन दोपहरको घटनास्थल का निरीक्षण किया जिस पेड़ के पीछे आजाद ने प्राण विसर्जन किए, वह वृक्ष फूलों से लंदा था पेड़ पर कई जगह जनता ने आजाद

❒ ❒ ❒

लेखक–शचीन्द्र नाथ बख्शी

जन्म 27-12-1900 देहावसान 23-11-1984

21 वर्ष की आयु में क्रान्तिकारी संगठन से सम्पर्क, वाराणसी में अनुशीलन समिति का कार्य प्रारम्भ। वाराणसी, लखनऊ व झाँसी में नवयुवकों को प्रेरित कर संगठन में सम्मिलित करना, जिनमें चन्द्रशेखर आज़ाद भी। 9 अगस्त 1925 को काकोरी काण्ड को क्रियान्वित करने वाले दस क्रान्तिकारियों में से एक, इस काण्ड में आजीवन कारावास। कारावास की अवधि में बरेली सेण्ट्रल जेल में 53 व नैनी सेण्ट्रल जेल में 47 दिनों का ऐतिहासिक अनशन।

स्वाधीनता के पश्चात वर्ष 1969 में वाराणसी से विधानसभा के सदस्य निर्वाचित। वर्ष 1962 से 1980 के मध्य लेख व संस्मरणों को लिखने का कार्य। पुस्तक 'क्रान्ति के पथ पर..' तथा बांग्ला पुस्तक 'स्मृतीर बातायने..' प्रकाशित।

संकलन व प्रस्तुति–राजेन्द्र नाथ बख्शी

पुत्र श्री शचीन्द्र नाथ बख्शी, जन्म 15-10-1942, सिविल अभियन्ता, उ0 प्र0 जल निगम में 35 वर्षों की सेवा के पश्चात वर्ष 2000 में सेवानिवृत्त। क्रान्तिकारियों के गौरवपूर्ण इतिहास को वर्तमान पीढ़ी के समक्ष प्रस्तुत करने का लक्ष्य।



ISBN 978-81-904820-3-5